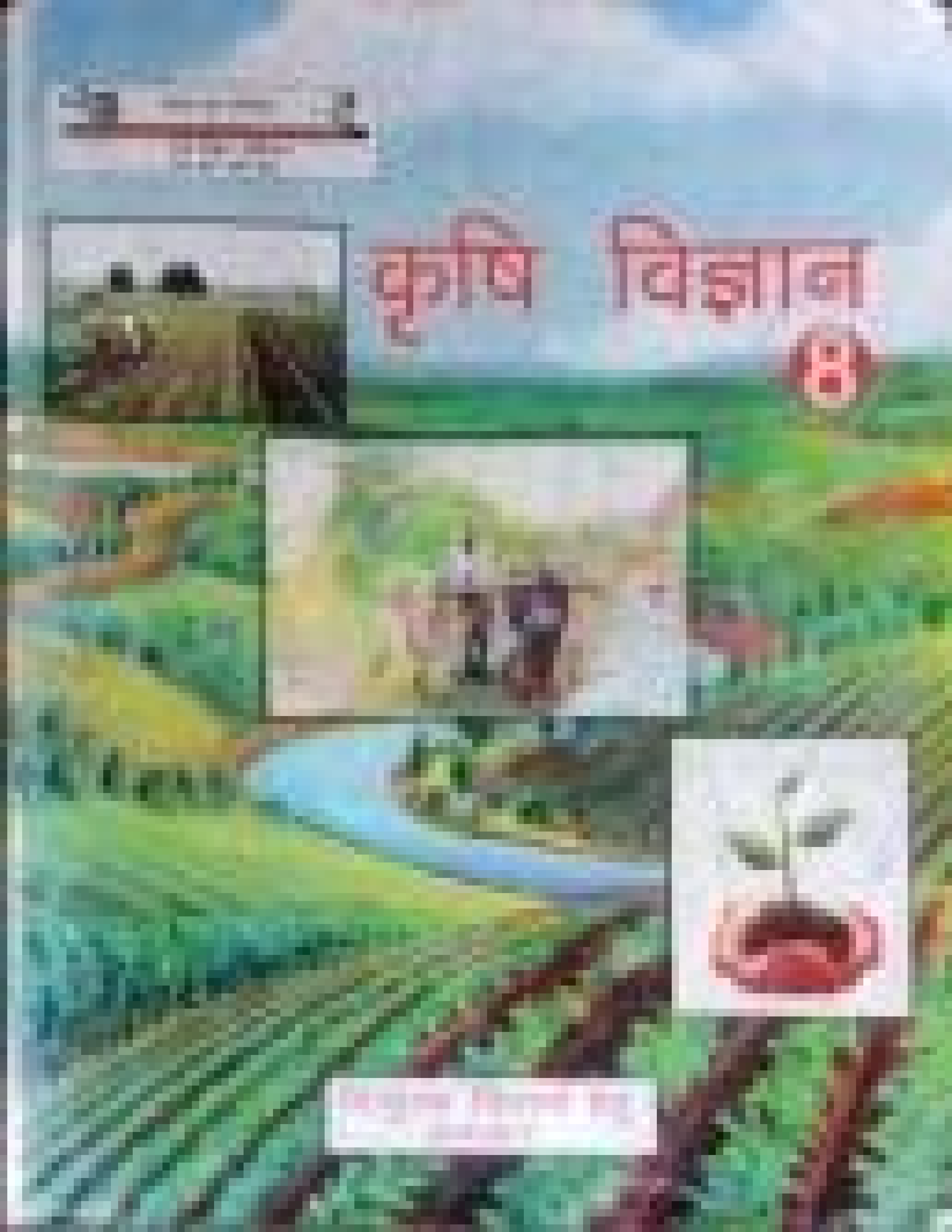
कृषि विज्ञान
8

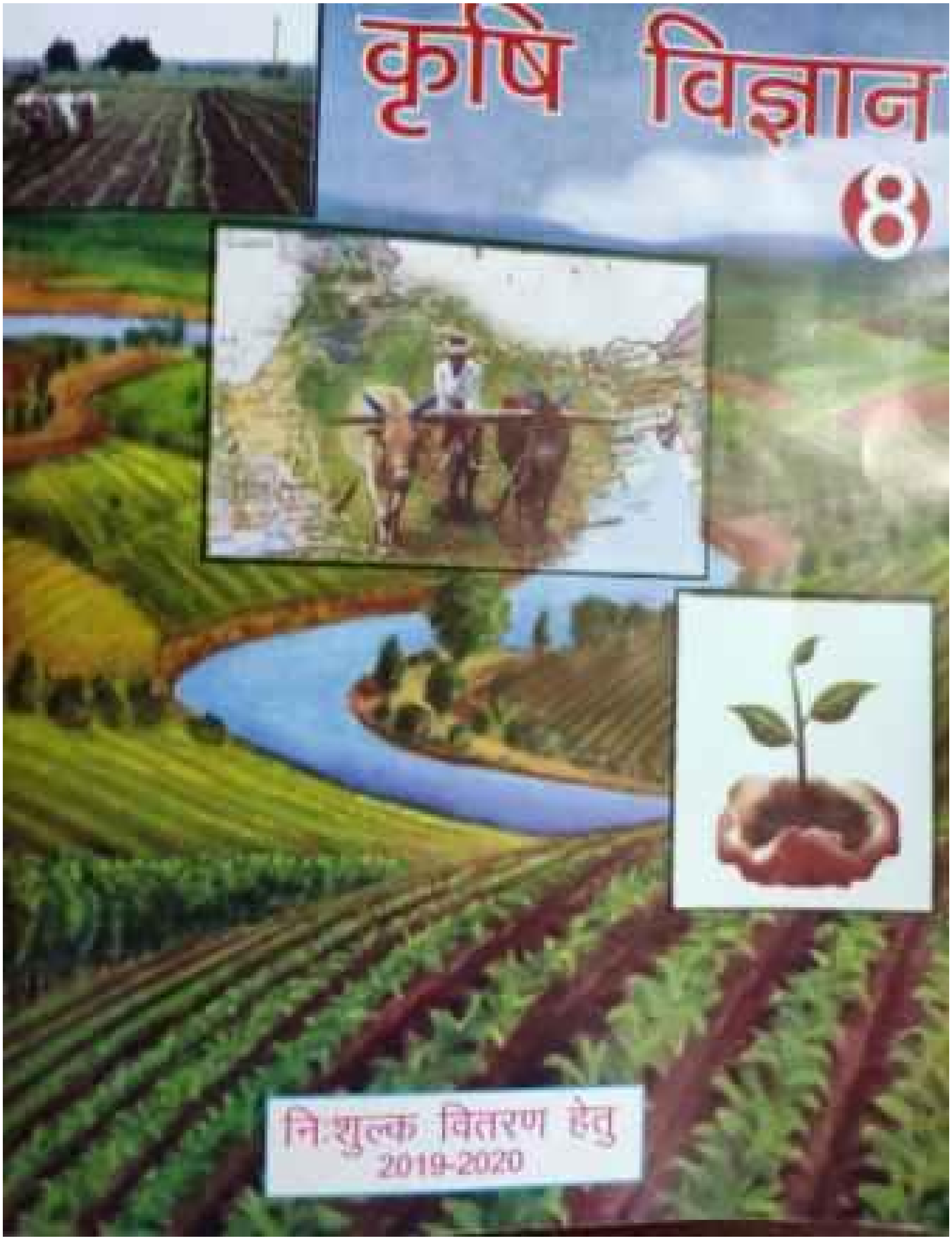
कृषि विज्ञान
8
नि:शुल्क वितरण हेतु
2019-2020

# कृषि विज्ञान

**(कक्षा 8)**


*E-BOOKS DEVELOPED BY*

1. Dr.Sanjay Sinha Director SCERT,U.P,Lucknow
2. Ajay Kumar Singh J.D.SSA,SCERT,Lucknow
3. Alpa Nigam (H.T) Primary Model School, Tilauli Sardarnagar,Gorakhpur
4. Amit Sharma (A.T) U.P.S, Mahatwani ,Nawabganj, Unnao
5. Anita Vishwakarma (A.T) Primary School ,Saidpur,Pilibhit
6. Anubhav Yadav (A.T) P.S.Gulariya,Hilauli,Unnao
7. Anupam Choudhary (A.T) P.S,Naurangabad,Sahaswan,Budaun
8. Ashutosh Anand Awasthi (A.T) U.P.S,Miyanganj,Barabanki
9. Deepak Kushwaha (A.T) U.P.S,Gazaffarnagar,Hasanganz,unnao
10. Firoz Khan (A.T) P.S,Chidawak,Gulaothi,Bulandshahr
11. Gaurav Singh (A.T) U.P.S,Fatehpur Mathia,Haswa,Fatehpur
12. Hritik Verma (A.T) P.S.Sangramkheda,Hilauli,Unnao
13. Maneesh Pratap Singh (A.T) P.S.Premnagar,Fatehpur
14. Nitin Kumar Pandey (A.T) P.S, Madhyanagar, Gilaula , Shravasti
15. Pranesh Bhushan Mishra (A.T) U.P.S,Patha,Mahroni Lalitpur
16. Prashant Chaudhary (A.T) P.S.Rawana,Jalilpur,Bijnor
17. Rajeev Kumar Sahu (A.T) U.P.S.Saraigokul, Dhanpatganz ,Sultanpur
18. Shashi Kumar (A.T) P.S.Lachchhikheda,Akohari, Hilauli,Unnao
19. Shivali Gupta (A.T) U.P.S,Dhaulri,Jani,Meerut
20. Varunesh Mishra (A.T) P.S.Madanpur Paniyar,Lambhua,Sultanpur

# विषय-सूची


पाठ्यक्रम का मासिक विभाजन
इकाई-1:मृदा गठन या मृदा कणाकार
इकाई-2:जलवायु
इकाई-3:प्राकृतिक आपदाएं
इकाई-4:पशुपालन
इकाई-5:बागवानी एवं वृक्षारोपण
इकाई-6:कृषि यन्त्र
इकाई-7:सिंचाई की विधियाँ तथा जल निकास
इकाई-8:सामान्य फसलें एवं फसल चक्र
इकाई-9:फल परिक्षण

**पाठ्यक्रम का मासिक विभाजन**

| माह | पाठ्यवस्तु |
|---|---|
| अप्रैल | मृदा गठन व इसके आधार पर मृदा का वर्गीकरण, मृदा गठन का मृदा उर्वरता से सम्बन्ध, ऊसर भूमि बनने के कारण प्रकार व सुधार |
| मई | अम्लीय मृदा, अम्लीय मृदा बनने के कारण अम्लीय तथा क्षारीय मृदा की तुलना अम्लीय मृदा का सुधार |
| जून | ग्रीष्मावकाश |
| जुलाई | जलवायु, जलवायु विज्ञान, वर्षामापक यन्त्र, दाबमापी यन्त्र, जलवायु के आधार पर कृषि क्षेत्रों का विभाजन |
| अगस्त | प्राकृतिक आपदाएँ - आँधी, तूफान एवं टिड्डी का प्रकोप<br>**प्रथम सत्र परीक्षा** |
| सितम्बर | पशुपालन |
| अक्टूबर | बागवानी एवं वृक्षारोपण, पुनरावृत्ति<br>**अर्द्धवार्षिक परीक्षा** |
| नवम्बर | कृषि यन्त्र, जुताई के यन्त्र, हलों के प्रकार, मैस्टन एवं शाबाश हलों का ज्ञान अन्य कृषि यन्त्र |
| दिसम्बर | सिंचाई की विधियाँ तथा जल निकास<br>**द्वितीय सत्र परीक्षा** |
| जनवरी | सामान्य फसलें एवं फसल चक्र |
| फरवरी | फल परिरक्षण - जैम, जैली बनाना, टमाटर का सॉस बनाना, अचार बनाना, तेल में तथा नमक में आम का अचार बनाना, सेब का अचार बनाना पुनरावृत्ति व प्रायोगिक कार्य |
| मार्च | **वार्षिक परीक्षा** |

back

# इकाई-1 मृदा गठन या मृदा कणाकार

- मृदा गठन के आधार पर मृदा का विभाजन
- मृदा गठन का मृदा उर्वरता से सम्बन्ध
- मृदा परिच्छेदिका
- ऊसर तथा ऊसर बनने के कारण

  * लवणों का उन्मूलन

  *जटिल लवणों का साधारण लवणो में परिवर्तन,

  *ऊसर सुधार

- अम्लीय तथा क्षारीय मृदा की तुलना
- अम्लीय मृदा बनने के कारण
- अम्लीय मृदा का सुधार

हम जानते हैं कि मृदा,चट्टानों एवं खनिजों के टूटने से विभिन्न आकार के कणों से बनी हैं विभिन्न आकार के कणों को भिन्न - भिन्न नाम दिया गया हैं जैस`बालू, सिल्ट और मृत्तिका मृदा में इन तीनों प्रकार के कणों का विभिन्न मात्रा में आपसी जुड़ाव या सम्बन्ध मृदा गठन कहलाता हैं``विभिन्न मृदा वर्ग में कणों के सापेक्षिक अनुपात को मृदा

गठन (कणाकार) कहते हैं " विभिन्न प्रकार के कण एवं उनके आकार का अवलोकन निम्नलिखित तालिका से कर सकते हैं -

| मृदा कण | आकार (व्यास मिली मीटर में) |
|---|---|
| 1. मोटी बालू | 2.0 – 0.2 |
| 2. बारीक बालू | 0.2 – 0.02 |
| 3. सिल्ट | 0.02 – 0.002 |
| 4. मृत्तिका | 0.002 मिमी से कम |

**मृदा गठन के आधार पर मृदा विभाजन** -

सामान्यत: गठन के आधार पर मृदा को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया गया है-

**मृदा गठन के आधार पर मृदा वर्गीकरण–**

| मिट्टी का नाम (गठन वर्ग) | बालू % | सिल्ट % | मृत्तिका % |
|---|---|---|---|
| 1. बलुई | 80-100 | 0-20 | 0-20 |
| 2. बलुई दोमट | 50-80 | 0-50 | 0-20 |
| 3. दोमट | 30-50 | 30-50 | 0-20 |
| 4. सिल्टी | 0-20 | 50-70 | 30-50 |
| 5. चिकनी मिट्टी | 0-50 | 0-50 | 30-100 |

**मृदा गठन का मृदा उर्वरता से संबंध** -

1 . मृदा गठन उर्वरा शक्ति को स्थिर रखता है और फसलों के पोषण में सहयोग करता है।

2 . जिस मृदा के कण आकार में बड़े होते हैं वह मृदा कृषि के लिए अनुपयुक्त होती है।

3. हल्की मृदा, गठन की दृष्टि से अच्छी नहीं मानी जाती है, यदि उसमें भारी मृदा मिला दी जाय तो वह कृषि योग्य हो जाती है।

4. अच्छे गठन वाली मृदा में रंध्रों की संख्या अधिक होती है इस प्रकार की मृदा में नमी एवं वायु संचार उचित मात्रा में बना रहता है।

5. समुचित गठन वाली मृदा सूर्य के प्रकाश को सोखने की शक्ति रखती है और यह पादप वृद्धि के लिए नितान्त आवश्यक है।

6. अच्छी गठन वाली मृदा में जीवाणु (बैक्टीरिया) एवं अन्य सूक्ष्म - जीव सुचारू रूप से अपना कार्य करते हैं।

**मृदा परिच्छेदिका**

मृदा की ऊपरी परत से विभिन्न संस्तरों से होती हुई पैतृक पदार्थ तक खड़ी (ऊर्ध्वाधर) काट मृदा परिच्छेदिका कहलाती है। इससे मृदा के निर्माणकाल, निर्माण की शक्तियाँ तथा अपरदन का बोध होता है। पुरानी मृदाओं की परिच्छेदिका गहरी तथा नवीन निर्मित मृदाओं की परिच्छेदिका उथली होती है।

**ऊसर क्या है ?**

सोडियम कार्बोनेट की उपस्थिति के कारण भूमि ऊसर होती है । खेत में ऊसर भूमि छोटे या बड़े पैच के रूप में होती है ,और वहाँ सफेद नमक या चूना सा फैला रहता है। कहीं- कहीं एक विशेष प्रकार की घास दिखायी देती है, जिसे ऊसर घास कहते हैं । यह घास अन्य स्थानों पर नहीं पायी जाती है । इस भूमि में पेड़ पौधे या फसलें नहीं उगती इस भूमि पर खेती नहीं होती है। अलग - अलग स्थानों पर इसको अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है जैसे ऊसर, रेह, रेहस, रेहाला तथा कल्लर आदि ।

**ऊसर की समस्या** - भारत में ऊसर भूमि 70 लाख हेक्टर और उत्तर प्रदेश में 13 लाख हेक्टर है । जनसंख्या बढ़ने से दिन प्रतिदिन खेती योग्य भूमि घटती जा रही है। बढ़ी हुयी आबादी के लिए भोजन जुटाने के लिए ऊसर जमीन को खेती योग्य बनाना जरूरी है । हमारे प्रदेश की सारी ऊसर भूमि यदि ठीक हो जाय तो प्रतिवर्ष 6 करोड़ 90 लाख टन खाद्यान्न पैदा होने लगेगा और हमारी आवश्यकता के लिए पर्याप्त होगा ।

उत्तर प्रदेश के 39 जिलों में ऊसर भूमि पायी जाती है लेकिन इनमें 17 ऐसे जिले हैं जहाँ ऊसर क्षेत्र अधिक हैं। ये जिले हैं-बुलन्दशहर,अलीगढ़, हाथरस, एटा, मैंनपुरी, इटावा,

औरयो, कानपुर देहात, उन्नाव, हरदोई, रायबरेली, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, जौनपुर, इलाहाबाद,फतेहपुर और आजमगढ़ ।

**ऊसर भूमि का प्रभाव** - ऊसर भूमि के कारण अनेक समस्यायें पैदा होती हैं जैसे-

1) जहाँ ऊसर क्षेत्र होता है, वहाँ मकानों के प्लास्टर जल्दी गिरने लगते हैं और यह धीरे-धीरे ईटों को गलाने लगता है।

2) ऊसर वाले गाँवों में कच्ची या पक्की सड़के सभी टूटी, उखड़ी हुई एवं ऊबड़- खाबड़ दिखायी देती हैं ।

3) वर्षा होने पर यह मिट्टी साबुन की तरह फिसलने लगती है जिस पर चलना मुश्किल होता हैं ।

4) ऊसर भूमि कड़ी होती हैं, जो पानी नहीं सोखती जिससे बाढ़ आती हैं, जमीन पर कटाव होता हैं और नाले बन जाते हैं ।

5) ऊसर में उगने वाली घास हानिकारक होती हैं ।

6) ऊसर भूमि में केचुआ आदि नहीं देखा होगा । ऊसरीलेपन के कारण इसमें लाभदायक जीवाणुआें की कमी होती हैं जिसके कारण पोषक तत्व कम हो जाते हैं ।

7) ऊसर भूमि में सोडियम, कैल्सियम और मैग्नीशियम के कार्बोनेट , क्लोराइड, सल्फेट और बाइकार्बोनेट की उपस्थिति फसलों एवं पौधों पर हानिकारक प्रभाव डालती है। इस कारण बीजों का जमाव एवं पौधों की वृद्धि यथोचित नहीं होती ।

8) ऊसर भूमि पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं ।

9) ऊसर मिट्टी बहकर अच्छे खेतों को भी खराब कर देती हैं।

**ऐसी भूमि जिसमें लवणों (सोडियम कार्बोनेट , सोडियम बाइकार्बोनेट , सोडियम क्लोराइड आदि) की अधिकता के कारण ऊपरी सतह सफेद दिखायी देने लगती हैं और फसलें नहीं**

**उगायी जा सकती हैं उसे ऊसर भूमि कहते हैं ।**

**ऊसर भूमि बनने के कारण-**

हम जानते हैं कि खनिज पदार्थ, जैविक पदार्थ, हवा और पानी आपस में मिलकर मृदा का निर्माण करते हैं। मृदा में लगभग आधा भाग खनिज पदार्थ होता हैं । इन खनिज पदार्थ में जिस भी पदार्थ की अधिकता होगी, मृदा में उसी प्रकार के गुण पाये जायेंगे। ऊसर भूमि बनने में खनिज पदार्थ, कम वर्षा, अधिक तापमान जैसे प्राकृतिक कारण सहायक होते हैं । कभी - कभी अधिक जल भराव के कारण मिट्टी में निचली सतह के लवण घुलकर ऊपर आ जाते हैं जिसके कारण भूमि ऊसर बन जाती हैं ।

**प्राकृतिक कारण**-

1) **वर्षा की कमी** - ऐसे क्षेत्रों में जहाँ वर्षा कम होती हैं, मृदा में उपस्थित घुलनशील लवण और क्षार पानी के साथ बहकर नष्ट नहीं होते और मिट्टी की ऊपरी सतह  पर एकत्र हो जाते हैं जिससे भूमि ऊसर हो जाती हैं ।

2) **अधिक तापमान**- अधिक तापक्रम वाले क्षेत्रों में मृदा की ऊपरी सतह की नमी बराबर नष्ट होती रहती है। कोशीय प्रभाव के कारण भूमि की निचली सतह के लवण और क्षार मृदा घोल के साथ मिट्टी की ऊपरी सतह पर इकट्ठा होने लगते हैं। ये लवण और क्षार भूमि को ऊसर बना देते हैं ।

3) **मिट्टी का निर्माण क्षारीय एवं लवणयुक्त चट्टानों से होना**-यदि मिट्टी के निर्माण में क्षारीय या लवणीय खनिजों की अधिकता होती हैं तो वह भूमि ऊसर हो जाती हैं।

4) **भूमिगत जलस्तर का ऊचाँ होना** - ऐसी भूमि जहाँ भूजल स्तर मृदा के ऊपरी सतह से 2 मीटर या इससे कम होता हैं वहाँ लवण धीर-धीरे मृदा की ऊपरी सतह पर इकट्ठे हो जाते हैं और भूमि ऊसर हो जाती हैं ।

5) **भूमि के नीचे कड़ी परत का होना** - मृदा के नीचे जब कड़ी अथवा मजबूत कंकरीली परत होती हैं तो धरातल का जल नीचे नहीं जा पाता हैं जिससे भूमि की ऊपरी सतह पर

पाये जाने वाले लवण और क्षारों का रिसाव नहीं होता हैं और वे सतह पर एकत्र होकर भूमि को ऊसर बना देते हैं ।

6) **लगातार बाढ़ और सूखे की स्थिति** - यदि किसी स्थान पर लगातार बाढ़ और सूखे का क्रम चलता रहे तो वहाँ की भूमि भी ऊसर हो जाती हैं । बाढ़ आने से नीचे के नमक और क्षार ऊपरी सतह पर आ जाते हैं और सूखा होने पर वे मृदा के ऊपरी सतह पर ही रह जाते हैं जिससे भूमि ऊसर हो जाती हैं ।

**अप्राकृतिक कारण या मानवीय कारण** -

1) **जल निकास की कमी** - विकास प्रक्रिया में जगह-जगह पर रेल पटरियों, नहरों, सड़को और इमारतों तथा बाँधों के कारण अवरोध होने से वर्षा का जल बहकर नदी नालों में नहीं जा पाता हैं और जल निकास अवरुद्ध हो जाता है। जल निकास के अभाव में भूमि ऊसर होने लगती है।

2) **अधिक सिंचाई** - नहर वाले क्षेत्रों में एवं अन्य स्थानों पर भी अधिक मात्रा में आनियमित सिंचाई करने से भूमि की निचली सतह के लवण और क्षार ऊपर की सतह पर आ जाते हैं , गर्मियों में जल वाष्पन से उड़ जाता हैं, लेकिन लवण और क्षार ऊपरी सतह पर रह जाते हैं ।

3) **नहर वाले क्षेत्रों में जल रिसाव** - प्रदेश में अधिकांश ऊसर भूमि नहर वाले क्षेत्रों में पायी जाती हैं । इसका कारण इन क्षेत्रों में गलत ढंग से एवं अधिक मात्रा में सिंचाई करना हैं जिससे निरन्तर रिसाव के कारण भूजल स्तर ऊचाँ हो जाता हैं, साथ ही लवण और क्षार घुलकर ऊपर आ जाते हैं वाष्पन द्वारा जल के उड़ जाने पर नमक और क्षार सतह पर एकत्र हो जाते हैं।

4) **भूमि को परती छोड़ना** - भूमि में खेती न करने से लवण और क्षार रिसाव द्वारा नीचे नहीं जा पाते हैं और भूमि ऊसर हो जाती है।

5) **वनों और वनस्पतियों की अंधाधुंध कटाई** - वनों और पेड़ पौधों की कटान से भूमि की ऊपरी पर्त खुल जाती हैं जिससे भूमि पर लवण और क्षार एकत्र होने लगते हैं।

6)**क्षारीय उर्वरकों का अधिक प्रयोग** - कई ऐसे उर्वरक जैसे सोडियम नाइट्रेट का अधिक प्रयोग करने से भूमि में क्षारीय लवणों की अधिकता हो जाती हैं ।

7) **खारे पानी से सिंचाई** - कुछ स्थानों पर पानी खारा होता हैं । लगातार सिंचाई करने से भूमि की सतह पर हानिकारक लवण एकत्र होने लगते हैं तथा भूमि ऊसर होने लगती हैं ।

**ऊसर भूमि के प्रकार**-

ऊसर भूमि में ऊपर की पर्त, सफेद,काली, और भूरे रंग की हो सकती हैं । रंगों के अनुसार इनके गुण भी अलग - अलग होते हैं ।

**लवणों का उन्मूलन**

मृदा के अन्दर जैसे ही लवणों का निर्माण आरम्भ हो या लवणों का सान्द्रण बढ़ना शुरू हो, उसी समय इन्हें भौतिक, रासायनिक या जैविक विधियों से पूरी तरह समाप्त करने की प्रक्रिया उन्मूलन कहलाती है।

**जटिल लवणों का साधारण लवणों में परिवर्तन -**

ऊसर भूमि सोडियम के कार्बोनेट बाई कार्बोनेट एवं सल्फेट लवणों की उपस्थिति के कारण बनती है। अतः ऊसर भूमि के सुधार हेतु जटिल लवणों को घुलनशील साधारण लवणों में परिवर्तित करना चाहिये। इस हेतु ऊसर भूमि में जिप्सम, पाइराईट या सल्फर का प्रयोग सुधारक के रूप में करते हैं। ऊसर मृत्तिका जिसके साथ सोडियम आयन अधिघोषित रहते हैं, अमोनियम सल्फेट के प्रयोग से घुलनशील सरल लवण सोडियम सल्फेट में बदल जाते हैं एवं निक्षालित होकर जड़ क्षेत्र से दूर चले जाते हैं जिससे मृदा का पी।एच। उदासीन हो जाता है।

$$Na^{+} + (NH_4)_2SO_4 \rightarrow NH_4^{+} + Na_2SO_4 + H_2O$$

**ऊसर भूमि का सुधार**- उत्तर प्रदेश का बड़ा भू भाग ऊसर से प्रभावित हैं । नहरी सिंचाई, जल निकास का अभाव एवं भूमि को पर्ती छोड़ने से ऊसर क्षेत्र लगातार बढ़ता जा रहा हैं ।

ऐसी स्थिति में इसका सुधार बहुत आवश्यक हैं । ऊसर भूमि के सुधार से पूर्व (चाहे वह जिस प्रकार की भूमि हो ) कुछ ऐसे कार्य होते हैं जिन्हें करना आवश्यक हैं, उसके बिना ऊसर सुधार सम्भव नहीं हैं । इन कार्यो को **प्रक्षेत्र विकास** कार्य कहते हैं जैसे-

1-**मेंड़बन्दी** - ऊसर भूमि को सुधारने से पूर्व भूमि के छोटे-छोटे प्लाट (खेत) बनाकर ऊँची और मजबूत मेंड़ बाँध दी जाती हैं, जिससे वर्षा का पानी या सिंचाई का जल बहने न पाए।

2-**समतलीकरण**- ऊसर भूमि यदि ऊँची-नीची हैं तो सुधार से पूर्व उसे समतल कर लेना चहिैए ।

3-**पानी की व्यवस्था**- पानी के अभाव में ऊसर बनता हैं, लेकिन ऊसर सुधार में पानी महत्वपूर्ण कार्य करता हैं । ऊसर भूमि सुधार के लिए सुनिश्चित सिंचाई सुविधा यानी बोरिंग पम्प सेट का होना आवश्यक हैं । इसके लिए प्रत्येक 4 हेक्टेयर पर एक बोरिंग पम्पसेट स्थापित किया जाता हैं । बोरिंग के साथ प्रत्येक खेत तक पानी ले जाने के लिए सिंचाई नालियों का निर्माण भी करना पड़ता हैं ।

4-**जल निकास की व्यवस्था** - ऊसर सुधार के लिए चाहै जिस विधि का प्रयोग किया जाए, भूमि से लवण हटाने हेतु पानी भरकर उसे बहाने की प्रक्रिया करनी पड़ती हैं । इसके अतिरिक्त पानी को निकालने के लिए खेत नाली, इन नालियों को मिलाकर सम्पर्क नाली, जो खेत नाली से गहरी और चौड़ी  नालियाँ बनाई जाती हैं, बनाना चहिैए । सम्पर्क नालियाँ मुख्य जल निकास नाले से मिला दी जाती हैं ।

5-**जुताई**- ऊसर भूमि को 8-12 सेमी गहरी जुताई करके खेत तैयार करते हैं । इन सभी कार्यो को पूर्ण करने के बाद ऊसर सुधार कार्य किया जाता हैं, जिसमें ऊसर के प्रकार के अनुसार भौतिक, रासायनिक और जैविक विधियाँ अपनाते हैं ।

क) **भौतिक विधियाँ**

1-**भूमि की ऊपरी परत को खुरचकर बाहर करना** -लवणयुक्त ऊसर की ऊपरी परत को 3-4 सेमी खुरचकर मिट्टी को किसी नाले,नदी या बड़े तालाब में फेंक देते हैं । इससे ऊपरी सतह के लवण निकल जाते हैं और भूमि कृषि कार्य हेतु उपयुक्त हो जाती हैं ।

2-**भूमि में पानी भरकर बहाना** -ऐसी ऊसर भूमि, जिसमें घुलनशील क्लोराइड और सल्फेट पाये जाते हैं कई बार पानी भरकर उसे खेत की नाली से बहा देते हैं , जिससे घुलनशील लवण बहकर बाहर चले जाते हैं और भूमि कृषि कार्य हेतु उपयुक्त हो जाती हैं ।

3-**जल निकास का समुचित प्रबन्ध** -जल भराव वाले क्षेत्रों में यदि फील्ड ड्रेन, लिंक ड्रेन और मेंन ड्रेन (खेत नाली,सम्पर्क नाली और मुख्य जल निकास नाला )साफ कर दिया जाय तो वर्षा के पानी के साथ भूमि के घुलनशील लवण घुलकर बाहर चले जाते हैं और भूमि कृषि कार्य हेतु उपयुक्त हो जाती हैं ।

4-**निक्षालन व रिसाव क्रिया या लीचिंग**- इस विधि में खेतों की अच्छी तरह गहरी जुताई करके पानी भरते हैं और एक सप्ताह तक खेत में पानी भरा रहने देते हैं । इससे भूमि में उपस्थित घुलनशील नमक घुलकर भूमि के नीचे चले जाते हैं और भूमि कृषि कार्य हेतु उपयुक्त हो जाती हैं ।

5-**भूमि के नीचे की कड़ी परत को तोड़ना**- ऊसर भूमि में खासकर लवणीय क्षारीय ऊसर भूमि में ऊपरी सतह से नीचे 60-100 सेमी के मध्य कंकड़ की परत पायी जाती हैं । इस प्रकार की ऊसर भूमि में पास-पास गड्ढे बना दिये जायें या कड़ी परत यंत्र की सहायता से तोड़ दी जाय तो ऊपरी सतह के नमक और क्षार रिसाव द्वारा नीचे चले जाते हैं ।

6-**ऊसर वाले खेत में बालू या अच्छी मिट्टी का प्रयोग** - यदि ऊसर भूमि में बालू या अच्छी मिट्टी की एक परत डाल दी जाय तो भूमि कुछ हद तक कृषि कार्य हेतु उपयुक्त हो जाती हैं।

ख)**रासायनिक विधियाँ**- ऐसी भूमि जिसमें कैल्सियम कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट की अधिकता होती हैं जो पानी में घुलनशील नहीं होते, पानी के साथ बहकर या लीचिंग या रिसाव से नीचे नहीं जा पाते हैं । उस भूमि को सुधरने के लिए रासायनिक विधियाँ अपनायी जाती हैं। रासायनिक विधियों के प्रयोग से पहले मिट्टी की जाँच कराकर उसमें मौजूद कार्बोनेट की मात्रा के अनुसार ही विभिन्न रसायनों- जिप्सम, पायराइट या गन्धक का प्रयोग किया जाता हैं।

1) **जिप्सम का प्रयोग**- यह एक खनिज मिश्रण हैं जो राजस्थान में खुदाई करके निकाला जाता हैं । इसकी आवश्यक मात्रा खेत में मिलाने से पूर्व प्रक्षेत्र विकास का कार्य जैसे मेंड़बन्दी,समतलीकरण, जल निकास नाली, बोरिंग और जुताई पूर्ण कर लेते हैं । उत्तर प्रदेश में लगभग एक हेक्टेयर भूमि के सुधार के लिए 10 से 12 टन जिप्सम की आवश्यकता होती हैं । जिप्सम की मात्रा को बोरी के अनुसार खेत में ढेर लगाकर फिर समान रूप से बिखेर देते हैं । जिप्सम खेत में बिखेरने के बाद हल्की जुताई करके पानी भरते हैं । यह कार्य मई के अन्त और जून के प्रारम्भ में किया जाता हैं । खेत में 5-10 दिन तक पानी भरा रहना चहिए । इससे अघुलनशील लवण और क्षार जिप्सम के साथ क्रिया करके घुलनशील अवस्था में बदल जाते हैं ।

(i) जिप्सम + पानी →गन्धक का अम्ल + कैल्सियम ऑक्साइड

$$\mathbf{CaSO_4 + H_2O \rightarrow H_2SO_4 + CaO}$$

(ii) सोडियम युक्त क्ले +गन्धक का अम्ल + कैल्सियम ऑक्साइड→ कैल्सियम युक्त क्ले + सोडियम सल्फेट+पानी

$$\mathbf{2Na^{+}(Clay) + H_2SO_4 + CaO \rightarrow Ca\,(Clay) + Na_2SO_4 + H_2O}$$

इस प्रकार अघुलनशील सोडियम घुलनशील सोडियम सल्फेट में बदल जाता हैं जो पानी के साथ भूमि के नीचे चला जाता हैं या पानी को खेत से बाहर निकालते समय खेत से बाहर हो जाता हैं।

2) **गन्धक या गन्धक के अम्ल का प्रयोग**- ऊसर सुधार के लिए गन्धक या गन्धक के अम्ल का प्रयोग सीधे किया जा सकता हैं लेकिन यह काफी महँगा हैं और प्रयोग में भी कठिनाई होती हैं । इसलिए इसका प्रयोग नहीं करते हैं ।

ग) **जैविक विधियाँ**-ऊसर सुधार के लिए कई जैविक विधियाँ भी अपनायी जाती हैं जैसे-

1)**शीरे का प्रयोग** - चीनी मिल से निकलने वाले शीरे को क्षारीय भूमि में प्रयोग करके इसे ठीक किया जा सकता हैं । इसमें उपस्थित गन्धक एवं अन्य रसायन ऊसर सुधार में सहायक होते हैं।

2) **चीनी मिल से निकलने वाली प्रेसमड** - प्रेसमड का प्रयोग 15 से 20 टन प्रति हेक्टेयर किया जाय तो इसमें पाये जाने वाले गन्धक और कार्बनिक पदार्थ ऊसर सुधार में मदद करते हैं ।

3)**कार्बनिक खादों का प्रयोग**- ऊसर खेतों में यदि गोबर, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट को अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाय तो इन खादों से बनने वाले कार्बनिक अम्ल और मृदा संरचना में होने वाले सुधारों से ऊसर सुधर जाता हैं ।

4) **हरी खाद के रूप में ढैंचा की खेती** - यदि ऊसर भूमि में हरी खाद के रूप में ढैंचा की खेती गर्मियों में की जाय तो इससे ऊसर सुधार में बड़ी मदद मिलती हैं। ढैंचा जहाँ मिट्टी में जीवाँश की मात्रा बढ़ाता हैं वहीं इस की जड़े मिट्टी की कड़ी परत तोड़ने और नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का कार्य करती हैं इससे ऊसर सुधार में मदद मिलती हैं ।

5)**ऊसर सहनशील फसलों एवं प्रजातियों की खेती**- ऊसर भूमि सुधार के बाद यदि लगातार कई वर्षो तक ऊसर सहनशील फसलों की खेती की जाय तो ऊसर धीरे-धीरे ठीक हो जाता हैं । ऊसर भूमि के लिए उपयुक्त फसल चक्र - उसर सुधार के दो वर्षो तक धान (खरीफ)-गेहूँ (रबी)-ढैंचा (जायद) की फसलों को बोना चाहिए ।

**अम्लीय मिट्टी-**

इस प्रकार की मिट्टी प्राय: अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इस मिट्टी में अधसड़े जीवांश अधिक मात्रा में होते हैं। अम्लीय मिट्टी देखने में काली और अजीब दुर्गन्धयुक्त होती हैं । अम्लीयता के कारण उत्पादन कम या बिल्कुल नहीं होता हैं । अम्लीय मिट्टी के घोल में हाइड्रॉक्सिल आयनों (OH)- की तुलना में हाइड्रोजन आयनों (H)+ की सान्द्रता अधिक होती हैं। मृदा का पी.एच. सदैव 7.0 से कम होता हैं।हमारे देश में अम्लीय मृदा असम, केरल, त्रिपुरा, मणिपुर, पश्चिम बंगाल, बिहार का तराई क्षेत्र, उत्तर प्रदेश में हिमालय के

तराई क्षेत्र में कुछ स्थानों पर पायी जाती हैं । उदासीन मृदा में हाइड्रोजन एवं हाइड्रॉक्सिल आयनों की सान्द्रता में पूर्ण समानता होती हैं ।यह स्थिति शुद्ध जल में पायी जाती हैं । मृदा घोल में सामान्यत: घुलनशील खनिज पदार्थ, एवं पौधों के अवशेष के घुलनशील अंश पाये जाते हैं।

## अम्लीय और क्षारीय मिट्टी की तुलना

**अम्लीय और क्षारीय मिट्टी की तुलना**

| | अम्लीय मिट्टी | क्षारीय मिट्टी |
|---|---|---|
| 1. | इसकी उत्पत्ति अविक वर्षा के स्थानों में होती है। | क्षारीय मिट्टी कम वर्षा के स्थानों में बनती है। |
| 2. | मिट्टी में अधसड़े जीवांश की अधिकता होती है जिसके सड़ने से उत्पन्न कार्बन डाईऑक्साइड पानी के साथ मिल कर कार्बोनिक अम्ल बनाती है। | कम वर्षा के स्थानों में क्षारीय लवण घुलनशील होकर पानी के साथ नष्ट नहीं होते और ऊपरी सतह पर एकत्र हो जाते हैं। |
| 3. | जब मिट्टी में हाइड्रोजन $(H^{+})$ आयनों की सान्द्रता बढ़ जाती है तो मिट्टी अम्लीय हो जाती है। | जब मिट्टी में $(OH^{-})$ आयनों की सान्द्रता बढ़ जाती है तो मिट्टी क्षारीय या ऊसर बन जाती है। |
| 4. | चूने के प्रयोग द्वारा अम्लीय मिट्टी के कणों से हाइड्रोजन आयन बाहर आते हैं। | चूने के प्रयोग से क्षारीय मिट्टी से सोडियम आयन बाहर आते हैं। |
| 5. | अम्लीय मिट्टी का pH 7 से कम होता है। | क्षारीय मिट्टी का pH 7 से अधिक होता है। |

## अम्लीय मिट्टी बनने के कारण-

1- **क्षारीय तत्त्वों का निक्षालन**- अधिक वर्षा के स्थानों में मिट्टी के कणों से क्षारक तत्त्व अलग होकर घुल जाते हैं जो निक्षालन क्रिया द्वारा भूमि की गहरी तहों में चले जाते हैं।इस प्रकार कैल्सियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम और सोडियम क्षारक तत्व बह जाते हैं और उनके स्थान पर मिट्टी कणों के साथ हाइड्रोजन आयन आधिशोषित हो जाते हैं, जिससे मिट्टी अम्लीय हो जाती हैं ।

2- **फसलों द्वारा क्षारकों का उपयोग**- पौधे स्वभावत: अम्लों की तुलना में क्षारक तत्त्वों का अधिक उपभोग करते हैं । अत: खेतों में निरन्तर फसलें लेने के कारण मिट्टी में इन तत्त्वों की कमी हो जाती हैं, जिससे मिट्टी अम्लीय हो जाती हैं ।

3- **मिट्टी का अम्लीय चट्टानों से बना होना** - कुछ मिट्टी ऐसी चट्टानों की बनी होती हैं जिनमें क्षारक खनिजों अथवा क्षारक तत्त्वों की अपेक्षा क्वार्टज और सिलिका की

अधिकता होती हैं जो अम्लीय चट्टानें कहलाती हैं। ऐसी मिट्टी स्वभाव से ही अम्लीय होती हैं।

4- **रासायनिक उर्वरकों का प्रभाव** -वे उर्वरक, जिनके ऋणात्मक आयनों की अपेक्षा पौधे धनात्मक आयनों का अधिक उपयोग करते हैं, उन्हें सामान्यत: अम्लीय उर्वरक कहते हैं। इन उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मिट्टी अम्लीय हो जाती हैं। अमोनियम सल्फेट इसी प्रकार का उर्वरक हैं जिसकी अमोनिया तो मिट्टी कणों द्वारा ले ली जाती हैं,लेकिन सल्फेट(SO4-- ) घोल में बच जाता हैं जो मिट्टी कणों द्वारा छोड़े गये हाइड्रोजन आयनों (H+) से मिलकर सल्फ्यूरिक अम्ल बनाता हैं जिसके प्रभाव से मिट्टी अम्लीय हो जाती हैं ।

**H+** **NH4+**

**मृत्तिका + $(NH_4)_2So_4$ → मृत्तिका + $H_2So_4$**

**H+** **NH4+**

5- **कृषि क्रियाएं**- बिना जुती बंजर भूमि प्राय: घास -पात के आवरण से ढकी होती हैं जिससे निक्षालन तथा रिसने की क्रियाएं कम होती हैं। किन्तु जब भूमि पर कृषि कार्य किये जाते हैं तो मिट्टी से क्षारकों के बहकर नीचे जाने की क्रिया को बल मिलता हैं ,फलस्वरूप धीरे धीरे मिट्टी के क्षार नष्ट हो जाते हैं और उनके स्थान पर मिट्टी कणों पर हाइड्रोजन आयनों की सान्द्रता बढ़ जाती हैं ।

**अम्लीय मिट्टी का सुधार**

1)**चूने का प्रयोग**- इस कार्य के लिए किसी भी ऐसे क्षारक लवण का प्रयोग किया जा सकता हैं जिससे मिट्टी के कणों में हाइड्रोजन आयनों की सान्द्रता कम हो।सामान्यत: इस कार्य के लिए कैल्सियम(चूना) और मैग्नीशियम का बहुतायत से प्रयोग किया जाता हैं। अम्लीय मिट्टी को सुधारने के लिए चूने का प्रयोग सर्वोत्म हैं इसके प्रयोग से मिट्टी की

भौतिक दशा भी सुधरती हैं।चूने में कैल्सियम कार्बोनेट , बुझा हुआ चूना तथा जलयोजित चूना का प्रयोग होता हैं।

चूने की मात्रा अम्लीयता पर निर्भर करती हैं यदि मृदा का pH 7 से काफी कम हैं तो अधिक चूने की आवश्यकता होगी।साथ ही चूने की किस्म पर भी मात्रा निर्भर करती हैं। सामान्यत: 1 से 4 टन चूने की मात्रा एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होती हैं ।

2)**जल निकास की उचित व्यवस्था**- दलदल तथा पानी रुकने वाले स्थानों में जल निकास की उचित व्यवस्था करने से मिट्टी की अम्लीयता नष्ट हो जाती हैं । इसके बाद उसमें चूना मिलाना चाहिए ।

3)**अम्लीय रोधक फसलों का उगाना**- यद्यपि अधिकांश कृषि फसलों के लिए अम्लीय मिट्टी अनुकूल नहीं होती, फिर भी कुछ ऐसी फसलें हैं जिन्हें अम्लीय मिट्टी में उगाया जा सकता हैं । अम्ल सहिष्णु फसलों में प्याज, पालक, कददू ,जौ, सेम, गाजर, आलू, टमाटर, बाजरा, ज्वार, लौकी तथा तरबूज आते हैं।

4)**क्षारक उर्वरकों का प्रयोग** - कैल्सियम नाइट्रेट जैसे उर्वरकों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाना चाहिए ।

5)**पोटाश युक्त उर्वरकों का प्रयोग**- अम्लीय मृदा में पोटाश युक्त उर्वरकों तथा खादों के प्रयोग से भी सुधार होता हैं ।

**अभ्यास के प्रश्न**

1)सही विकल्प के सामने सही(√) का निशान लगाइये ।

**i) मोटी बालू का आकार होता हैं -**

क) 4.0 - 3.0 मिमी

ख) 3.0 - 2.0 मिमी

ग) 2.0 - 0.2 मिमी

घ) 0.2 - 0.02 मिमी

**ii) बलुई मिट्टी में बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका की % मात्रा होती हैं -**

क) 30 - 50, 30 - 50, 0 - 20

ख) 80 - 100, 0 - 20,0 - 20

ग) 20 - 50, 20 - 50, 20 - 30

घ) 0-20,50 - 70, 30 - 50

**iii) ऊसर भूमि बनने का कारण हैं -**

क) अत्यधिक वर्षा

ख) घने जंगल का होना

ग) जल निकास का अच्छा होना

घ) क्षारीय उर्वरकों का अधिक मात्रा में उपयोग

**iv) ऊसर भूमि को सुधारा जा सकता हैं-**

क) चूना का प्रयोग करके

ख) जिप्सम का प्रयोग करके

ग) क्षारीय उर्वरकों का प्रयोग करके

घ) क्षारीय उर्वरकों का अधिक मात्रा में उपयोग

**2)निम्नालिखित प्रश्नों में खाली जगह भरिये -**

क) मृत्तिका का आकार...........मिमी होता हैं ।(0.2/ 0.002)

ख) दोमट मिट्टी में सिल्ट की मात्रा........... %होती हैं ।(30 - 50/80-100)

ग) मेंड़बन्दी करना ऊसर भूमि सुधार की ........... विधि हैं ।(रसायनिक / भौतिक)

घ) पायराइट का प्रयोग ...........सुधार में किया जाता हैं ।(अम्लीय / क्षारीय )

ङ) अम्लीय भूमि सुधार में ........... का प्रयोग किया जाता हैं ।(जिप्सम / चूना )

3) निम्नालिखित कथनों में सही पर**(√)** का तथा गलत पर **(x)** का चिन्ह लगाइये -

क) मृदा में बालू , सिल्ट एवं मृत्तिका कणों का विभिन्न मात्राआें में आपसी सम्बन्ध मृदा गठन कहलाता हैं ।( )

ख) अच्छी गठन वाली मृदा में रन्ध्रों की संख्या बहुत कमहोती हैं ।( )

ग) भारत में ऊसर भूमि 170 लाख हेक्टेयर हैं ।( )

घ) नहरों द्वारा अधिक सिंचाई करने से भूमि ऊसर नहींहोती हैं ।( )

ङ) अम्लीय मृदा का pH 7.0 से बहुत कम होता हैं ।( )

4) निम्नालिखित में स्तम्भ `अ' का स्तम्भ `ब' से सुमेल कीजिए-

| स्तम्भ `अ' | स्तम्भ `ब' |
| --- | --- |
| क- बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका कणों का आपसी सम्बन्ध रहे | लवणीय मृदा |
| ख- अधिक बालू की मात्रा | भौतिक विधि |

| | | |
|---|---|---|
| ग- | लवण | मृदा गठन |
| घ- | निक्षालन | जैविक विधि |
| ङ- | कार्बनिक खादों का प्रयोग | बलुई |

5) मृदा गठन की परिभाषा लिखिए ।

6) मृदा कण एवं उनके आकार के विषय में लिखिए ।

7) मुख्य कणाकार वर्ग लिखिए ।

8) ऊसर भूमि की परिभाषा लिखिए ।

9) अम्लीय मृदा की परिभाषा लिखिए।

10) मृदा गठन एवं मृदा विन्यास में अन्तर लिखिए ।

11) मृदा गठन क्याहैं ? मृदा गठन वर्गो का विस्तार से वर्णन कीजिए ।

12) ऊसर भूमि किसे कहते हैं ? ऊसर भूमि के प्रभाव का वर्णन कीजिए।

13) ऊसर भूमि बनने के विभिन्न कारणों का वर्णन विस्तार से कीजिए ।

14) ऊसर भूमि कितने प्रकार की होती हैं ?उनका वर्णन विस्तार से कीजिए ।

15) अम्लीय मृदा बनने के कारण एवं उसके सुधार की विधियों को लिखिए।

**प्रोजक्ट कार्य**

1) लवण प्रभावित क्षेत्रों से मृदा के ऊपरी सतह को एकत्रित करके ऊसर भूमि की पहचान कराना ।

2) बच्चों को खेत में ले जाकर पायराइट या जिप्सम डलवाना ।

3) अम्लीय तथा क्षारीय मृदा का तुलनात्मक अवलोकन करना।

**प्रायोगिक कार्य**

बड़ी नहरों के आसपास के क्षेत्रों का भ्रमण कर बच्चों को उच्च जल स्तर, रिसाव और सतह पर लवणों के जमा होने की प्रक्रिया को दिखाया व समझाया जाय ।

back

# इकाई 2 -जलवायु

HVJL4D

*** जलवायु विज्ञान की परिभाषा**

***वर्षा मापक यंत्र,दाबमापी यंत्र**

***जलवायु के आधार पर कृषि क्षेत्रों का विभाजन**

किसी विस्तृत भू - भाग में कई वर्षो की लम्बी अवधि तक पायी जाने वाली मौसम की दशाओं के औसत को उस स्थान की जलवायु कहते हैं तथा जलवायु के कारकों के क्रमबद्ध अध्ययन को जलवायु विज्ञान कहते हैं।

किसी क्षेत्र की कृषि क्रियाओं और फसलों पर वहाँ की जलवायु का गहरा प्रभाव पड़ता हैं । मौसम के अनुकूल ही फसलें उगाई जाती हैं। मौसम के अनुसार फसलें तीन प्रकार की होती हैं : खरीफ, रबी और जायद ।

फसलों का चयन मौसम पर निर्भर हैं- जिन क्षेत्रों में वर्षा अधिक होती हैं, वातावरण गर्म व आर्द्र होती हैं ऐसे स्थानों पर खरीफ में धान और गन्ना की अच्छी खेती की जाती हैं जैसे बंगाल,बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में।पहाड़ी स्थानों पर ठंडक अधिक होने के कारण वहाँ सेब, नाशपाती, आड़ू और खुबानी आदि की खेती की जाती हैं ।

मैदानी क्षेत्र के तीनों मौसम में अनुकूल फसलों की खेती करके बहुत अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता हैं जैसे खरीफ में वर्षा अच्छी होने पर धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, अरहर, उर्द, मूगँ , मूगँफली और गन्ना आदि की खेती की जाती हैं। अधिक वर्षा होने पर जल निकास की समुचित व्यवस्था उपज में वृद्धि लाती हैं । रबी में गेहूँ, आलू, मटर, और

सब्जियों की बहुत अच्छी फसले उगाई जाती हैं। यदि जाड़े के दिनों में वर्षा हो जाती हैं तो पाला नहीं पड़ता हैं। असिंचित क्षेत्रों में प्राकृतिक सिंचाई से अधिक पैदावार होती हैं ।गर्मी के मौसम में जायद की फसलों की खेती सफलता पूर्वक की जा सकती हैं । इन फसलों में गर्मी और लू के प्रभाव को सहन करने की पर्याप्त क्षमता होती हैं जैसे उत्तर प्रदेश में ककड़ी, खरबूजा, तरबूज, लौकी, कददू ,परवल, तुरई तथा भिण्डी आदि की बहुत अच्छी फसलें ली जाती हैं। अतः मनुष्य की जीविका का साधन प्रकृति और स्थान विशेष की जलवायु पर निर्भर करता हैं ।

किसी स्थान की जलवायु अध्ययन हेतु निम्नालिखित उपकरणों का उपयोग किया जाता हैं -

1)तापमान -तापमापी(थर्मामीटर)

2)वर्षा -वर्षामापी(रेन गेज )

3)पवन-वायुवेगर्मीपी (एनिमोमीटर)

तापमापी के द्वारा किसी स्थान का तापमान जाना जाता

वर्षामापी यन्त्र

चित्र 2.1 वर्षामापी

इस यंत्र की सहायता से किसी स्थान की निश्चित समय में होने वाली वर्षा की माप की जाती हैं । इसमें एक बेलनाकार खोल में एक शीशे की बोतल होती हैं । बोतल के व्यास के

बराबर व्यास वाली एक कीप इस पर रखी होती हैं । वर्षा में इसे खुला रख देते हैं। वर्षा की बूँदें बोतल में एकत्र हो जाती हैं। उसे नाप लिया जाता हैं जिससे वर्षा की मात्रा ज्ञात हो जाती हैं ।

**वायुदाबमापी(बैरोमीटर)यंत्र**

**चित्र2(अ) पारा वायुदाबमाप**

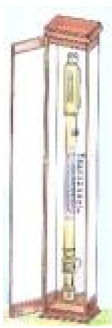

**चित्र2 (ब) निर्द्रव वायुदाबमापी**

किसी स्थान का वायुदाब ज्ञात करने के लिए इस यंत्र का उपयोग करते हैं । इसमें काचँ की नली में पारा भरा होता हैं। नली का निचला हिस्सा एक थैली में लगे नुकीले पेंच द्वारा पारे की नांद को छूता हैं । यहाँ पर एक पैमाना लगा होता हैं । वायुदाब घटने- बढ़ने पर साथ में लगे थर्मामीटर से तापक्रम व वायु दाब मापी से वायुदाब साथ-साथ ज्ञात हो जाता हैं ।

* वर्षा व शरद काल में वायुदाब एकदम कम हो जाने पर वर्षा की संभावना होती हैं । ग्रीष्मऋतु में कम होने पर आँधी का संकेत मिलता हैं।

* नली में पारे का धीरे-धीरे चढ़ना साफ मौसम का संकेत देता हैं।

*किसी स्थान की ऊचाँई व गहराई का भी पता इस यंत्र से लगाया जाता हैं।

जलवायु के आधार पर उत्तर प्रदेश में कृषि क्षेत्रों का विभाजन-उत्तर प्रदेश को जलवायु के आधार पर निम्नालिखित क्षेत्रों में विभाजित किया जाता हैं । इनमें सम्मिलित प्रमुख जनपद इस प्रकार हैं-

1) भावर या तराई क्षेत्र- सहारनपुर,बिजनौर, रामपुर,मुरादाबाद, पीलीभीत,बरेली व लखीमपुर

2) पश्चिमी मैदानी क्षेत्र-(गंगा यमुना दोआब के जनपद)सहारनपुर,मुजफ्फरनगर,मेरठ,गजियाबाद,बुलन्दशहर

3) मध्यम पश्चिमी मैदानी क्षेत्र- बिजनौर,मुरादाबाद,रामपुर,बरेली,पीलीभीत,शाहजहाँपुर,बदायूँ

4) दक्षिण -पश्चिमी शुष्क क्षेत्र- आगरा मंडल के समस्त जनपद

5) मध्य मैदानी क्षेत्र -लखनऊ,कानपुर,इलाहाबाद मंडल( प्रतापगढ़ को छोड़कर )

6) बुन्देलखण्ड क्षेत्र -बुन्देलखण्ड मंडल

7) उत्तरी - पूर्वी मैदानी क्षेत्र-गोंडा, बहराइच,बस्ती,देवरिया व गोरखपुर

8) पूर्वी मैदानी क्षेत्र-बाराबंकी,सुल्तानपुर,प्रतापगढ़ ,आजमगढ़ ,गाजीपुर,फैजाबाद,अम्बेडकरनगर, जौनपुर, वाराणसी ।

कृषि पर जलवायु का प्रभाव

जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ हमारी जरूरतें भी बढ़ गयीं, अतः उसकी पूर्ति के लिये हम लगातार वनों का दोहन करने लगे। जिसके कारण वैश्विक ताप उष्मा में की लगातार वृद्धि होने लगी जो कि जलवायु परिवर्तन का एक मुख्य कारण है।

जलवायु का कृषि के विभिन्न घटकों पर प्रभाव पड़ता है।

मिट्टी पर प्रभाव

वैश्विक ताप ऊष्मा के कारण मिट्टी के तापमान में भी वृद्धि होती है, जिसके कारण मिट्टी में नमी की कमी होने लगती है। नमी की कमी से मिट्टी में लवणता बढ़ जाती है तथा इसकी उत्पादकता एवं उर्वरता प्रभावित होती है।

पौधे की वृद्धि पर प्रभाव

तापमान में वृद्धि के कारण मृदा में नमी हो जाती है जिससे पौधों का समुचित विकास नहीं हो पाता है। फसले ,ाधिकांशतः सूखने लगती है।  अतः इसका प्रभाव इसकी उत्पादकता पर पड़ता है और फसल की पैदावार कम हो जाती है।

अभ्यास के प्रश्न

1)सही उत्तर पर सही(√) का निशान लगाइये -

क. जलवायु किसे कहते हैं ?

i) तापमान को ii) वर्षा को

iii) सर्दी एंव गर्मी को iv) मौसम की दशाआें के औसत को

ख. निम्नालिखित में से कौन जलवायु का कारक हैं ?

i) तापमान ii) वर्षा

iii) पवन iv) उक्त सभी

ग जलवायु का अध्ययन किस विज्ञान के अन्तर्गत आता हैं ?

i) जीव विज्ञान ii) सस्य विज्ञान

iii) जलवायु विज्ञान iv) वनस्पति विज्ञान

घ तापमान मापते हैं -

i) वर्षामापी से ii) वायुदाबमापी से

iii) तापमापी से iv) उक्त में से कोई नहीं

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

i) तापमान मापने के लिए..........का प्रयोग करते हैं।

ii) वर्षा मापने के लिए ..........का प्रयोग करते हैं।

iii) वायु दाब मापने के लिए..........का प्रयोग करते हैं।

iv) जिन स्थानों पर वर्षा अधिक होती हैं वहाँ की जलवायु ..........होती हैं ।

v) जलवायु के कारकों के क्रमबद्ध अध्ययन को .......... कहते हैं।

3) निम्नालिखित कथनों में सही के सामने (√) का तथा गलत के सामने (x) का चिन्ह लगाइये -

i) जलवायु के कारकों के क्रमबद्ध अध्ययन को जलवायु विज्ञान कहते हैं। ( )

ii) जिन स्थानों पर वर्षा अधिक होती हैं वहाँ की जलवायु नम व आर्द्र होती हैं । ( )

iii) तापमान वायुदाबमापी से मापा जाता हैं । ( )

iv) वर्षा मापने के यन्त्र को तापमापी कहते हैं। ( )

v) किसी निश्चित क्षेत्रर में वहाँ की जलवायु के अनुसार फसल उगायी जाती हैं । (
)

4) मौसम के आधार पर फसलें कितनी प्रकार की होती हैं ?

5) जलवायु को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक हैं ?

6) वायुदाब मापने के लिए किस यन्त्र का प्रयोग करते हैं ?

7) वर्षा मापने वाले यन्त्र का सचित्र वर्णन कीजिए ।

8) जलवायु के आधार पर उत्तर प्रदेश में कृषि क्षेत्रों का वर्णन कीजिए ।

back

# इकाई -3 प्राकृतिक आपदाएं

HVTH61

- आँधी
- तूफान
- टिड्डी का प्रकोप

## आँधी

प्राय: आपने गर्मी के दिनों में हवा को तेज चलते हुए देखा होगा। कभी-कभी तेज हवा के चलने पर हम सभी अपने घर के दरवाजे व खिड़कियों को जल्दी से बन्द कर लेते हैं। क्या आपने कभी सोचा कि इस तरह की तेज हवा चलने के क्या कारण हैं और हवा के तेज चलने को क्या कहते हैं ?

### क्रियाकलाप

चित्र संख्या 3.1 तथा 3.2 का अवलोकन कीजिए । दोनों में हवा के बहाव की क्या दिशा हैं? आखिर दोनों परिस्थितियों में अन्तर का क्या कारण हैं

चित्र 3.1 समुद्री समीर

पहले हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि हवा क्यों चलती हैं ?

सूर्य की गर्मी से हवाएं गर्म होकर हल्की हो जाती हैं और ऊपर की ओर उठने लगती हैं । हवाओं के ऊपर उठने से नीचे की जगह खाली हो जाने से निम्न वायुदाब उत्पन्न हो जाता हैं और आसपास की उच्च वायुदाब वाली ठंडी हवाएं  तेजी से उस खाली जगह को भर लेती हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हवा उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब के क्षेत्र को चलती हैं ।

यही कारण हैं कि गर्मी के दिनों में जब मौसम अधिक गर्म हो जाता हैं तब हवा गर्म होकर ऊपर उठती हैं और हवा के ऊपर उठने से नीचे खाली स्थान पर निम्न वायुदाब का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता हैं तब इस निम्न वायु दाब के क्षेत्र में आसपास की ठंडी हवाएं, जो उच्च वायुदाब की होती हैं, बहुत तीव्र गति से खाली जगह की ओर आती हैं। विशेष बात हैं कि यहा हवा की गति 85-95 किमी प्रति घंटा होती हैं। वायु के इस तेज गति से चलने को आँधी कहते हैं ।

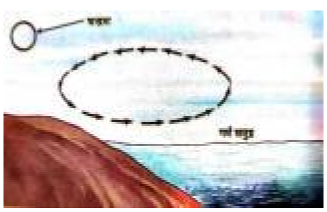

चित्र 3.2 स्थलीय समीर

आँधी के लक्षण -आँधी में हवायें काफी तीव्र गति से चलती हैं । कभी-कभी आसमान में बादल छा जाते हैं । पेड़-पौधे टूट जाते हैं। मकानों पर हल्की वस्तुएं जैसे खरपतवार,पॉलिथीन, कागज के टुकड़े आदि उड़ते हुए दिखाई देते हैं । पूरे घर में धूल भर जाती हैं ।आँधी आने पर कभी - कभी तेज वर्षा भी होती हैं ।

## तूफान

क्या आपने कभी ध्यान दिया हैं कि आँधी से भी खतरनाक हवा चलती हैं ? हवा इतनी तीव्र गति से चलने लगती हैं कि दूरभाष के तार टूट जाते हैं,बिजली के खम्भे एवं पेड़ पौधे उखड़ जाते हैं, घरों के छप्पर उड़ जाते हैं, खिड़कियों के शीशे टूट जाते हैं।इस प्रकार तहस-नहस करने वाली आँधी से भी तेज चलने वाली हवाओं को तूफान कहते हैं ।

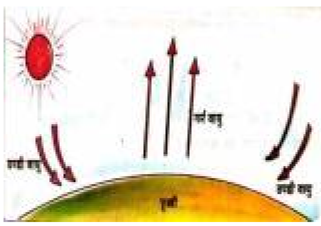

## चित्र 3.3 पवन का बढ़ना

तूफान आँधी से अधिक खतरनाक व विनाशकारीहोते हैं । तूफान में वायु की गति 95-115 किमी प्रति घंटा होती हैं । तूफान प्राय: स्थानीय होते हैं ।

तूफान स्थल व समुद्र दोनों जगहों पर आते हैं। स्थल पर आने वाले तूफान को स्थलीय तूफान व समुद्र में आने वाले तूफान को समुद्री तूफान कहते हैं। स्थलीय तूफान व समुद्री तूफान का सम्बन्ध जब चक्रवातों से होता हैं तो उसे चक्रवाती तूफान कहते हैं।

चक्रवात -चक्रवात में हवा चक्कर लगाती हुई गोलाई में घूमती हैं। जब चक्रवात में गर्मी के कारण वायु ऊपर चली जाती हैं तो वहाँ निम्न वायु दाब का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता हैं । उसके कारण आस- पास के क्षेत्र (उच्च वायु दाब ) से ठंडी वायु आकर गोलाई से घूमने लगती हैं। परन्तु केन्द्र तक न पहुँचकर दायीं दिशा व बाई दिशा की तरफ मुड़कर गोलाई में घूमकर चक्करदार हो जाती हैं ।

क्या टाईफून तथा हरीकेन का नाम सुना हैं ? यह सभी चक्रवात के रूप हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न नामों से जानते हैं। जैसे- चक्रवात को चीन में टाईफून, मेक्सिको की खाड़ी में हरीकेन,अफ्रीका में टॅारनिडों,बंगाल की खाड़ी में साइक्लोन व भारत में तूफान कहते हैं ।

चक्रवाती तूफान विभिन्न आकार के होते हैं। इनकी गति 130 किमी प्रति घंटे से भी अधिक होती हैं। चक्रवात समुद्र में तेज चलते हैं। स्थल पर इनकी गति कम हो जाती हैं। चक्रवाती तूफान कई दिनों तक प्रभावी रहता हैं। इसमें वायु की गति इतनी तीव्र होती हैं कि जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती हैं ।

चित्र 3.4 चक्रवात की रचना

आँधी एवं तूफान से लाभ

1)आँधी चलने पर प्रदूषित वायु के स्थान परिवर्तन से वायुमंडल शुद्ध होता हैं ।

2)भारत में वर्षा,जाड़े के दिनों में चक्रवाती हवाआें के कारण होती हैं जिनसे फसलों को अधिक लाभ होता हैं ।

3)समुद्र की लहरों में तीव्र गति के फलस्वरूप मोती, सीप, शंख, एवं अन्य कीमती एवं दुर्लभ वस्तुएँ आसानी से समुद्र तट तक आ जाती हैं ।

4)आँधी धरातल की सड़ी-गली हल्की वस्तुआें, खरपतवार आदि को उड़ाकर चारों ओर फैला देती हैं ।

आँधी एवं तूफान से हानियाँ

1)आँधी एवं तूफान के आने से यातायात में बाधा आती हैं ।

2)हवाई जहाज भी तूफान से प्रभावित होकर दुर्घटना ग्रस्त हो जाते हैं।

3)आँधी एवं तूफान फलदार वृक्षों एवं व्यवसायिक खेती को हानि पहुँचाते हैं ।

4)तूफान आने पर पेंड़ उखड़ जाते हैं एवं कमजोर मकान गिर जाते हैं ।

5)आँधी आने पर पेंड़ों की डालियाँ टूटकर गिर जाती हैं जिनसे बिजली एवं टेलीफोन के तार क्षतिग्रस्त हो जाते हैं । दूर संचार भी प्रभावित होता हैं ।

6)खड़ी फसल में सिंचाई करने के बाद यदि आँधी एवं तूफान आता हैं तो पूरी फसल खेतों में गिर जाती हैं जिससे फसल उत्पादन पर कुप्रभाव पड़ता हैं ।

टिड्डी (Locust) का प्रकोप

टिड्डी एक हानिकारक कीट हैं। इनका रंग हरा, भूरा एवं पीला होता हैं ।ये करोड़ों की संख्या में कई किलोमीटर तक लम्बे दल बनाकर उड़ती हैं और मार्ग में पड़ने वाले हरे-भरे खेतों, बागों व पेंड़-पौधे की पत्तियों व फलों को खाकर सम्पूर्ण क्षेत्र को नष्ट कर देती हैं । इनके आक्रमण के पश्चात प्रायः अकाल पड़ जाता हैं ।

टिड्डियाँ प्रायः सितम्बर एवं अक्टूबर के महीने में रेतीले स्थानों पर अंडे देती हैं । मादा रेत या नर्म मिट्टी में लगभग 5 मी गहरा गड्ढा खोदकर उसमें 80-100 तक बेलनाकार अंडे देती हैं । वर्षा आरम्भ होते ही अंडो से छोटे -छोटे पंखहीन बच्चे (निम्फ ) निकलते हैं जो फुदक

- फुदक कर चलते हैं। ये महीने भर में पाँच - छः बार त्वचा बदलकर पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेते हैं एवं पंखों द्वारा उड़ने लगते हैं ।

टिड्डी प्रकोप से हानि- टिड्डी करोड़ों एवं अरबों की संख्याआें में चलती हैं एवं जब आती हैं तब अंधेरा छा जाता हैं।टिड्डी केवल फसलों को ही हानि नहीं पहुँचाती हैं वरन सभी वनस्पतियों को खा जाती हैं।

बचाव- टिड्डी प्रकोप होने पर सामूहिक रूप से इनको मारने का कार्य तेजी से किया जाना चाहिए और सभी टिड्डियों को मारना आवश्यक हैं। यह एक ऐसा कीट हैं जिसे सामूहिक प्रयास करके ही नियन्त्रित किया जा सकता हैं क्योंकि इसका प्रकोप झुण्ड में फसलों तथा वृक्षों पर होता हैं ।

विशेष- टिड्डी नियन्त्रण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर भारत सरकार द्वारा टिड्डी नियंत्रण संगठन की स्थापना की गयी हैं जो पूरे वर्ष भर इसके प्रजनन, उत्पत्ति एवं फैलाव के बारे में जानकारी एवं नियन्त्रण के उपाय करता हैं ।

नीलगाय का प्रकोप- नीलगाय एक वन्य-पशु हैं । इस को पाड़ा व घोड़रोज या वनरोज के नाम से भी जाना जाता हैं । इनका आकार घोंड़े के समान होता हैं । ये हल्के नीले रंग के होते हैं । इनका पिछला हिस्सा ऊचाँ होता हैं। इनकी टागें लम्बी होती हैं। गर्दन के नीचे बालों का एक गुच्छा होता हैं। नर में 8 इंच तक लम्बे सींग भी पाये जाते हैं । प्रजनन काल वर्ष भर होता हैं । इसका बच्चा पैदा होते ही जमीन पर चलने लगता हैं ।

नीलगाय प्रायः झुण्ड में ही पाये जाते हैं । ये तीव्र गति से भागते हैं । छोटे पौधे, पेड़ों की पत्तियाँ इनके प्रिय भोजन हैं । बागवानी और कृषि फसलों में इससे बहुत नुकसान होता हैं । इनके प्रकोप के कारण अरहर, चना, मटर व अन्य दलहनी फसलों की खेती अधिक प्रभावित होती हैं बहुत थोड़े ही समय में नीलगाय खड़ी फसल नष्ट कर देती हैं ।

इनसे सुरक्षा का कोई उपयुक्त उपाय नहीं हैं । ऊँची बाड़ को भी छलांग लगाकर पार कर जाते हैं । प्राय: रखवाली के बाद भी ये फसलों को हानि पहुँचाते हैं। आग जलाकर और तेज आवाज करके इन्हें भगाया जा सकता हैं । वन्य पशु संरक्षण के अर्न्तगत इनका शिकार करना वर्जित हैं ।

विशेष -(i)आँधी एवं तूफान आने की जानकारी आधुनिक समय में मौसम विज्ञानी, प्रदेश एवं देश स्तर पर समय - समय पर दूरदर्शन एवं समाचार पत्र के माध्यम से भविष्यवाणी करते हैं जिससे इसके कुप्रभाव से बचा जा सकता हैं।

(ii)क्या हैं `सुनामी'(Tsunami) - `सुनामी' एक जापानी शब्द हैं।सुनामी समुद्र के गर्भ में भूकम्प के कारण उत्पन्न हलचल से पैदा होता हैं और इससे बड़ी तीव्र लहरें उत्पन्न होती हैं। यह तूफान भूकम्प के अलावा तटीय इलाकों में ज्वालामुखी के फटने से भी उत्पन्न हो सकता हैं। इसका कहर तटीय इलाकों परहोता हैं । यह समुद्री भूकम्प से जुड़ा होता हैं। यह तूफान 800किमी प्रति घण्टा के वेग से दूरियां तय कर लेता हैं। 26 दिसम्बर 2004 की यह दैवी आपदा (सुनामी) इंडोनिशया के सुमात्रा द्वीप में भूकम्प आने के कारण घटित हुई और कुछेक घण्टों के भीतर उसने दक्षिण भारत के समुद्र तटीय भागों (आन्ध्र प्रदेश तमिलनाडु, अन्डमान निकोबार तथा पांडिचेरी ) तथा श्रीलंका में तबाही का कहर ढा दिया। `सुनामी तूफान' में 10 मीटर या इससे भी अधिक ऊंची समुद्र की लहरें उठती हैं ।

उत्तरांचल की प्राकृतिक आपदा

प्राकृतिक आपदा, पृथ्वी की प्राकृतिक प्रक्रियाओं  से उत्पन्न एक बड़ी घटना है। हिमस्खलन, भूकम्प, ज्वालामुखी आदि जो कि मानव गतिविधियों को प्रभावित करते हैं, प्राकृतिक आपदा का रूप हैं भारत को आर्थिक-सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने वाला हिमालय पिछले कुछ दशकों से विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं  से प्रभावित रहा है। जून 2013 में उत्तरांचल में एकाएक बादल फटने की घटना के साथ मूसलाधार वर्षा हुई। तेज

एवं लगातार बारिश के कारण भूस्खलन होने लगा तथा त्वरित बाढ़ ,ा गयी। त्वरित बाढ़ ने केदारनाथ मन्दिर के आसपास बहुत तबाही की। बाढ़ के पानी का प्रवाह इतना तीव्र था कि जिसमें कई गाँव पूरे-पूरे बह गये। इस केदारनाथ त्रासदी में असीमित जनधन की हानि हुई।

अभ्यास के प्रश्न

1) सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये -

i)चक्रवात को चीनी भाषा में क्या कहते हैं ?

क) हरिकेन ख)साइक्लोन

ग)टारनिडो घ)टाईफून

ii)कौन सी प्राकृतिक आपदा हैं ?

क)आँधी ख)तूफान

ग)चक्रवात ग)उक्त सभी

2)निम्नालिखित वाक्यों में खाली जगह भरिये -

क) आँधी चलने पर वायु की गति लगभग.......... किमी प्रति घण्टा होती हैं ।

ख) वायु .......... वायुदाब से .......... वायु दाब की ओर चलती हैं ।

ग) तूफान आने पर हवा की गति लगभग .......... किमी प्रति घण्टा होती हैं ।

घ) वायु के गोलाकार या चक्करदार चलने को ..........कहते हैं ।

3) स्तम्भ `क' को स्तम्भ `ख' से मिलाइये ।

| स्तम्भ (क) | स्तम्भ (ख) |
|---|---|
| चीन | तूफान |
| मेक्सिको की खाड़ी | टाईफून |
| अफ्रीका | साइक्लोन |
| बंगाल की खाड़ी | टारनिडो |
| भारत | हरिकेन |

4)आँधी एवं तूफान में क्या अन्तर हैं ?

5) चक्रवाती हवाएं चलने का कारण बताइए ।

6) तूफान से कौन-कौन सी हानियाँ होती हैं ?

7) निम्नालिखित पर टिप्पणी लिखिए -

क) चक्रवात ख) टिड्डी दल का प्रकोप ग) नील गाय

8)आँधी और तूफान से होने वाले लाभ तथा हानियों का वर्णन कीजिए ?

**9) नीलगाय और टिड्डी दल फसल को कैसे हानि पहुँचाते हैं ? वर्णन कीजिए ।**

**10)उत्तरांचल की सन 2013 की  प्राकृतिक आपदा का वर्णन कीजिए**

back

# इकाई 4 -पशुपालन

- **पशुधन विकास की आवश्यकताएं**
- **पशुधन विकास की आवश्यकता**
- **पशुधन विकास के मूलभूत तत्व**
- **प्रजनन, पोषण, संरक्षण**
- **पशुधन विकास चार मूलभूत तत्वों पर निर्भर है - नस्ल, आहार, सामान्य प्रबन्ध, स्वास्थ्य एवं बीमारियाँ**

आदिकाल में मनुष्य पेट भरने के लिए मांस के रूप में भोजन,तन ढकने के लिए वस्त्र के रूप में खाल जानवरों से प्राप्त करता था। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने कुछ जानवरों को अपनी आवश्यकताआें की पूर्ति के लिए पालना शुरू किया जैसे-खेतों की सुरक्षा के लिए कुत्ता,दूध,ऊन,मांस,अण्डा आदि के लिए विभिन्न पशु पक्षी। आज मनुष्य उन्हें आश्रय प्रदान कर रहा हैं,पर्यावरण की विभिन्नताआें से उनका बचाव एवं उनमें उच्च गुणों का विकास करते हुए पशुधन के रूप में पालन पोषण कर रहा हैं। पशुधन में पालतू पशु जैसे-गाय,भैंस, भेंड़,बकरी,ऊँट, खरगोश तथा मुर्गी आदि सम्मिलित हैं।

## पशुधन विकास की आवश्यकताएं

संसार में सबसे ज्यादा पशु भारत में हैं लेकिन दूध के औसत उत्पादन में हम डेनमार्क, स्विट्जरलैंड,न्यूजीलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि देशों से बहुत पीछे हैं ।ऐसा क्यों हैं ? क्योंकि हम पशुधन उत्पादन के बारे में जागरूक नहीं हैं। जिसका अर्थ होता हैं पशुओं की देखभाल तथा उनके उपयोग पशुओं की देखभाल में मुख्य रूप से पशु- प्रजनन,पोषण, आवास तथा स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी देखभाल सम्मिलित हैं ।पशुओं का उपयोग हमारे

दैनिक जीवन में दूध, मांस आदि खाद्य- पदार्थ के उत्पादन के साथ -साथ जैविक खाद, चमड़ा, गोबर गैस आदि ऊर्जा स्रोत के रूप में सम्मिलित हैं।

1) **दूध की प्राप्ति** - हम सभी दूध पीते हैं दूध बच्चों के लिए सम्पूर्ण भोजन हैं । यह दूध हमें अपनी माँ के अलावा पशुओं से भी प्राप्त होता हैं । दूध ऐसा पेय पदार्थ हैं जिसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण तथा विटामिन आदि आवश्यक तत्त्व पाये जाते हैं। गाय का दूध बच्चों के लिए सर्वोत्तम होता हैं । गाय का दूध पीला क्यों होता हैं ? गाय का दूध और घी पीला होता हैं क्योंकि गाय के दूध में **कैरोटीन** होती हैं और यही कैरोटीन **विटामिन `ए'** में बदलती हैं ।पीलापन इसी कैरोटीन की उपस्थिति के कारण होता हैं ।

2) **कृषि में पशुओं का उपयोग** - हम दैनिक जीवन में देखते हैं कि हमारे कृषि कार्यो में अधिकतर पशु ही काम आते हैं । खेत की जुताई, बुवाई, मड़ाई, ढुलाई, सिंचाई आदि सभी कार्य पशुओं द्वारा ही किये जाते हैं। कृषि कार्यो में बैल, भैंस, ऊँट आदि का उपयोग ज्यादा होता हैं । हमारे देश में औसत जोत का आकार छोटा हैं इस कारण ट्रैक्टर आदि की संख्या अत्यन्त कम हैं ।

3) **जैविक खाद की प्राप्ति** - आपने खेत में केचुआ देखा हैं। केचुआ रासायनिक खाद के प्रयोग से मर जाता हैं। केचुए को प्रकृति का हलवाहा कहते हैं। जीवांश खाद,पशु के गोबर तथा मूत्र से बनती हैं । यह खाद मिट्टी में जीवांश की मात्रा बढ़ाती हैं, जिससे फसलों का उत्पादन अच्छा होता हैं । हमारे पास जितने अधिक पशु होंगे उतनी ही अधिक जीवांश खाद हमें प्राप्त होगी । कम्पोस्ट खाद बनाने में पशुओं के गोबर और मूत्र का प्रयोग किया जाता हैं ।

4) **अर्थव्यवस्था में योगदान** - हमको अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता पड़ती हैं । गाँवों में अधिकांश किसान डेरी के रूप में पशुपालन करते हैं तथा अपनी आवश्यकता से बचे दूध को बेचकर चिकित्सा,शिक्षा,वस्त्र आदि दैनिक आवश्यकताओं के लिए धन प्राप्त करते हैं। जिस स्वेटर से आप जाड़े में अपना शरीर गरम रखते हैं वह भेड़ के ऊन से बना होता हैं। पशुओं के चमड़े से जैकेट,जूते,टोपी तथा थैले आदि बनते हैं ।

पशुपालन तथा डेरी उद्योग से देश के बहुत लोगों को रोजगार उपलब्ध हो रहा हैं ।आजकल पशुपालन से रोजगार सृजन की अधिक संभावनायें हैं जिससे बेरोजगारी की समस्या को दूर किया जा सकता हैं।

## पशुधन विकास के मूलभूत तत्व

1. नस्ल - प्रजनन, वरण व छँटनी का परिणाम ही नस्ल सुधार है।

### प्रजनन

नर व मादा का सन्तानोत्पत्ति हेतु पारस्परिक सहवास 'प्रजनन' कहलाता है। प्रजनन हेतु अच्छे सांड़ व गायों का वरण किया जाता है। पशुपालन में वरण से तात्पर्य है उत्तम पशुओं का चुनाव तथा छँटनी का तात्पर्य है रोगग्रस्त एवं कम उत्पादन वाले पशुओं को अलग कर देना। वरण प्रजनन की आधार शिला है। पशु प्रजनन में शीघ्र उन्नति प्राप्त करने के लिए यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। प्रजनन के दृष्टिकोण से वरण का अर्थ अगली पीढ़ी के लिए उत्तम माता - पिता का चुनाव होता है। केवल वरण अथवा प्रजनन पद्धति से पशुओं का सुधार नहीं हो सकता बल्कि इन दोनों के तर्क संगत एवं सम्मिलित उपयोग द्वारा ही पशुधन का उत्थान सम्भव है।

### प्रजनन के उद्देश्य

i) पशु शीघ्र युवा हों ।

ii) उनमें रोग से बचाव की शक्ति हो।

iii) वे नियमित बच्चे देने वाले हों ।

iv) वे अधिक उत्पादक हों ।

v) उनके दूध में वसा अधिक हो।

vi) वे सभी प्रकार के वातावरण में रह सकें।

vii) भारवाहन व कृषि कार्यो हेतु उपयुक्त हों ।

**प्रजनन की विधियाँ**- प्रजनन की विधियों से तात्पर्य उन प्रविधियों(Techniques)से हैं,जिनके द्वारा सन्तानोत्पत्ति के लिए नर पशु का वीर्य मादा के जनन अंगों में पहुंचाया जाता हैं ।पशु प्रजनन की दो विधियाँ हैं -

क) **प्राकृतिक प्रजनन** - नर व मादा पशु के परिपक्व होने पर प्रकृति उनमें चेतना उत्पन्न करती हैं कि वे आपस में सहवास करके सन्तानोत्पत्ति करें । इस विधि में साँड़, गाय के मदकाल में सीधा सहवास करता हैं ।

ख) **कृत्रिम प्रजनन** - कृत्रिम प्रजनन को कृत्रिम गर्भाधान भी कहते हैं। कृत्रिम तरीके से स्वस्थ साँड़ का वीर्य,गाय के जननांग में यन्त्रों की सहायता से उचित समय पर डालना, कृत्रिम गर्भाधन कहलाता हैं।कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा सभी पशु गर्भाधान केन्द्रों एवं चिकित्सालयों पर उपलब्ध होती हैं ।

**विशेष -**

**1)परखनली शिशु के बारे में तो हमने सुना ही हैं । ठीक इसी प्रकार पशुओं में भी भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक विकसित की गयी हैं। इसकी सहायता से एक वर्ष में ही उत्तम नस्ल के एक पशु के शुक्राणुओं को उसी जति की 10-12 मादा पशुओं में अलग-अलग प्रत्यारोपित करके 10-12 बच्चे प्राप्त किये जा सकते हैं ।**

**2)क्लोनिंग- जेनेटिक इन्जीनियरिंग की सहायता से पशु की एक कोशिका से ठीक उसी प्रकार का दूसरा पशु कृत्रिम रूप से तैयार करने की विधा को क्लोनिंग कहते हैं।**

2) **पोषण** - हम सभी इस तथ्य से अवगत हैं कि सभी जीवधरियों को अपना जीवन सुचारु रूप से चलाने के लिए भोजन ग्रहण करना आवश्यक हैं ।पोषक तत्त्वों की आपूर्ति हेतु भोजन ग्रहण करना पोषण कहलाता हैं । मनुष्य अपनी पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति मुख्यत: अनाज, दाल व तिलहन की फसलों,सब्जियों,फलों,दूध,अण्डे,मांस,एवं मछली इत्यदि से करता हैं । ठीक इसी प्रकार हमारे पशुधन को भी उचित एवं संतुलित पोषण देना

आवश्यक हैं जिससे हमारे पालतू पशुओं की उत्पादन क्षमता एवं कार्य क्षमता बनी रहे । भोजन में मुख्य पोषक तत्व **प्रोटीन, वसा, शक्करा, खनिज लवण, विटामिन तथा जल** हैं।

कृषि के मुख्य उत्पादों जैसे गेंहूँ,धान,जौ,मक्का,चना,मटर,अरहर,मूगँ,उर्द,मूगँफली,सोयाबीन,सरसों आदि का उपभोग तो मनुष्य स्वयं कर लेता हैं किन्तु कृषि के उप उत्पादों जैसे- भूसा, पुआल, खली, चूनी, चोकर, छिलका आदि का उपभोग स्वयं नहीं करता हैं। इन बचे हुए उप उत्पादों का भी बेहतर उपयोग आवश्यक हैं अन्यथा पर्यावरणीय सन्तुलन बिगड़ जायेगा । इन पदार्थ का उपयोग हम मुख्यत: पशुओं को खिलाने के लिए करते हैं । इस प्रकार पशु हमारे पर्यावरण को बनाये रखने में मदद करता हैं । पशुओं को 24 (दिन व रात) घंटे के अन्तर्गत दिये जाने वाला दाना,चारा व पानी की कुल मात्रा को पशु आहार (राशन) कहते हैं । आहार के मुख्य घटक निम्नालिखित हैं -

**जीवन निर्वाह आहार** - यदि पशु से कोई कार्य न लिया जाय और वह उत्पादन भी न कर रहा हो तब भी उसे अपनी जैविक क्रियाआें (श्वसन, पाचन, ऊष्मा, संतुलन आदि) के लिए आहार की आवश्यकता होती हैं। इस स्थिति में पशु को 24 घंटे में दी जाने वाली चारे, पानी व दाने की मात्रा को जीवन निर्वाह आहार कहते हैं ।

**उत्पाद आहार** - हम पशुओं से उत्पादों के रूप में दूध, मांस, अण्डा, ऊन, आदि महत्वपूर्ण पदार्थ प्राप्त करते हैं । पशुओं को वृद्धि एवं उत्पादन के उद्देश्य से जीवन निर्वाह आहार के

अतिरिक्त जो खिलाते हैं उसे उत्पादन आहार कहते हैं । पशुओं से उत्पादन कार्य में हुई उर्जा क्षति की हम इस आहार द्वारा पूर्ति करते हैं । पशुओं से अधिक मात्रा तथा अच्छी गुणवत्ता का उत्पाद प्राप्त करने के लिए उत्पादन आहार की मात्रा एवं गुणवत्ता अच्छी होनी चाहिए ।

**कार्य आधरित आहार** - हम सभी ने अपने आस - पास के खेतों की जुताई, पाटा लगाने व सामानों की ढुलाई करते हुए पशुओं को देखा हैं,सोचिए कि कार्य करने में कितनी अधिक ऊर्जा का ह्रास होता हैं जिसकी पूर्ति हेतु दिए जाने वाले आहार की कमी से पशुओं की कार्यशक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो जाती हैं तत्पश्चात् पशु कमजोर हो जाता हैं ।

**संतुलित आहार** - जिस आहार में सभी पोषक तत्व (प्रोटीन, वसा, शक्करा, विटामिन, जल एवं खनिज लवण) उचित अनुपात में, उपयुक्त मात्रा में मौजूद हों उसे संतुलित आहार कहते हैं। यह आहार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इससे पशु की क्षमता का लाभ प्राप्त किया जा सकता हैं ।

**आहार परिकलन** - पशुओं को कम खिलाने से वे कमजोर हो जाते हैं तथा उत्पादन घट जाता हैं । पशुओं को अधिक खिलाने से पशु बीमार हो जाते हैं । तब उनकी पूरी क्षमता का उपयोग नहींहो सकेगा । अत: पशुओं को उनकी आवश्यकतानुसार ही खिलाना चाहिए तथा उनके शरीर भार के अनुसार शुष्क पदार्थ देना चाहिए ।

| पशु | शुल्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा) प्रति 100 किग्रा शरीर भार |
|---|---|
| सूखी गाय (दूध न देने की अवस्था) | 2.5 |
| दूध देने वाली गाय (500 किग्रा से कम) | 3.0 |
| दूध देने वाली गाय (500 किग्रा से अधिक) | 3.5 |
| बैल | 3.5 |
| सॉड | 3.5 |
| भैंस | 3.5 |

**जीवन निर्वाह हेतु निम्नवत् दाना देना चाहिए -**

गाय- 1 से 2 किग्रा

बैल- 2किग्रा

भैंस-                    2 किग्रा

साँड़-              2 किग्रा

**दूध उत्पादन हेतु निम्नवत् दाना देना चाहिए -**

गाय- एक किग्रा अतिरिक्त दाना प्रति 3 किग्रा दूध पर

भैंस- एक किग्रा अतिरिक्त दाना प्रति 2. 5 किग्रा दूध पर

औसत कार्य -1.5 किग्रा अतिरिक्त दाना प्रतिदिन

भारी कार्य  - 2.0 किग्रा अतिरिक्त दाना प्रतिदिन

कुल आहार में 2 /3 भाग चारा व 1/3 भाग दाने का मिश्रण रखना चाहिए। यही अनुपात सूखे चारे व हरे चारे में रखते हैं । खाने का नमक 40 ग्राम तथा खनिज लवण प्रतिदिन 50 ग्राम देना चाहिए।

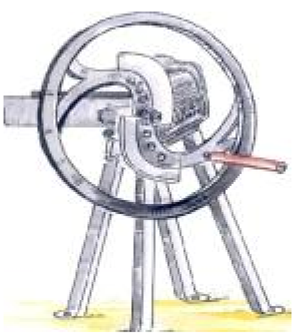

## चित्र 4.1  चारा मशीन

## संरक्षण -

पालतू पशुओं के विभिन्न नस्लों के बारे में हम जान चुके हैं। पशुपालक जब अपने किसी शुद्ध नस्ल की मादा पशु का प्रजनन किसी दूसरे नस्ल के नर से कराता है तो संकर नस्ल उत्पन्न हो जाती है। यदि इस संकर संतति की मादा को अगली पीढ़ियों की संतानोत्पत्ति

हेतु भिन्न भिन्न नस्ल के नर द्वारा प्रजनन कराया जाता है तो उत्पन्न संततियों में किसी भी शुद्ध नस्ल की विशेषतायें नहीं बच पाती हैं अथवा यह भी कहा जा सकता है कि उनमें कई नस्लों की विशेषताएँ आ जाती है। ऐसे पशुओं को देशी पशु कहा जाता है। अनियोजित एवं अनियन्त्रित प्रजनन के कारण देश में देशी पशुओं की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि हुई कि शुद्ध नस्ल के पशुओं में भारी कमी हो गयी है। नियोजित एवं नियन्त्रित प्रजनन की सहायता से विभिन्न नस्ल के पशुओं की संख्या पर्याप्त बनाये रखने को पशु संरक्षण कहा जाता है। पशु संरक्षण हेतु प्रजनन की क्रमोन्नति पद्धति का उपयोग किया जाता है। इस पद्धति में देशी मादा को शुद्ध नस्ल के नर से प्रजनन कराया जाता है फिर अगली छः पीढ़ियों तक मादा संततियों को उसी नर से या उसी नस्ल के शुद्ध नर से प्रजनन कराने पर शुद्ध नस्ल की संतति प्राप्त हो जाती है।

जब किसी नस्ल के पशुओं की संख्या बीस हजार से कम हो जाती है तो उसे संकटापन्न नस्ल कहा जाता है तथा यदि उसी नस्ल के मादा पशुओं की संख्या पांच हजार तक ही रह जाती है तो उस नस्ल को संकटाग्रस्त नस्ल कहा जाता है।

### 3) पशु प्रबन्धन

**अ) पशु स्वास्थ्य**- स्वस्थ होना सबके लिए जरूरी हैं।स्वस्थ रहने के लिए हम कुछ बातों का ध्यान रखते हैं।इसी तरह हमें पशु के स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए।स्वच्छ तथा स्वास्थ्यकर दूध पाने के लिए पशु का स्वस्थ एवं निरोग होना आवश्यक हैं।पशु के लिए ताजे पौष्टिक चारे की व्यवस्था करनी चाहिए। पशुशाला हवादार होनी चाहिए तथा उसकी नियमित सफ़ाई करनी चाहिए।पशुओं को बीमरियों से बचाव हेतु टीके (Vaccine)लगवाना चाहिए ।

**ब) पशु की सफ़ाई**- हम प्रतिदिन अपने शरीर की सफ़ाई का कितना ध्यान रखते हैं ?यदि हम प्रतिदिन स्वच्छता का ध्यान न रखें, तो हमें कई तरह की बीमारियाँ हो सकती हैं। इसी तरह हमें अपने पशुओं का भी ध्यान रखना चाहिए। दूध दुहने के पहले हमें पशु के शरीर की सफ़ाई करनी चाहिए अन्यथा पशु के शरीर पर लगा गोबर,धूल आदि गन्दगी दूध में गिरकर उसे प्रदूषित कर देते हैं।

पशु को नियमित खुरेरा करना बहुत लाभदायक रहता हैं। दूध दुहने से पूर्व दुधारू पशु के पिछले भाग अयन और थन को धोकर गीले कपड़े से पोंछ देना चाहिए। पशु को जूँ किलनी, चीलर आदि न पड़ने पाये इसका ध्यान रखना चाहिए ।

**स) दुग्धशाला की सफ़ाई**- जिस प्रकार हम अपने घर को साफ -सुथरा बनाये रखने हेतु झाड़ू लगाते हैं,कच्ची फर्श पर लिपाई करते हैं,पक्की फर्श पर पोंछा लगाते हैं उसी प्रकार स्वच्छ दुग्ध उत्पादन हेतु दुग्धशाला को साफ सुथरा रखना चाहिए। दुग्धशाला ऐसी होनी चाहिए जिसमें स्वच्छ वायु तथा प्रकाश पहुँँच सके जिससे गोबर या मूत्र की दुर्गन्ध न रहे। दूध दुहने के पहले दुग्धशाला से गोबर हटाकर सफ़ाई कर लेनी चाहिए। दुग्धशाला के फर्श को जीवाणुनाशक घोल से धोना चाहिए। दोहन के तुरन्त पूर्व दुग्धशाला में झाड़ू नहीं लगाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से दुग्धशाला की वायु में धूल व गन्दगी के कण बिखर सकते हैं जो दूध में गिरकर दूध को संदूषित कर सकते हैं।

दूध दुहने का बर्तन- हम लोग दूध दुहने हेतु बर्तन में बाल्टी का प्रयोग करते हैं।परन्तु क्या है उचित हैं ?दूध दुहने के लिए ऐसी बाल्टी प्रयोग करना चाहिए जिसका मुँह एक किनारे हो तथा ऊपर का अधिकांश भाग बन्द हो। यह बाल्टी स्टेनलेस स्टील की बनी होनी चाहिए। दूध के बर्तन को पहले ठण्डे पानी से फिर जीवाणु नाशक घोल से धुलते हैं। धुलाई के पश्चात बाल्टी को किसी स्वच्छ स्थान पर आैंधे मुँह रखकर सुखाने के पश्चात दुहने हेतु प्रयोग में लाते हैं।

**य) दूध दुहने वाला**-चूँकि बहुत सी बीमरियों के जीवाणु दूध में पहुँचकर दूध पीने वाले को भी उन्हें बीमरियों से ग्रसित कर सकते हैं अत: दूध दुहने वाला व्यक्ति निरोगी एवं साफ -सुथरा होना चाहिए। दूध दुहने वाले के हाथ साफ , शरीर एवं कपड़े स्वच्छ तथा नाखून कटे होने चाहिए ।

**र) दोहन विधि** -दुहने का तरीका ऐसा हो कि कम से कम जीवाणु दूध में प्रवेश कर सकें। दुहते समय प्रारम्भ की दो तीन धारें बाहर गिरा दें। दुहने हेतु सूखी एवं पूर्ण हस्त विधि सर्वोत्तम मानी जाती हैं ।

**ल) चारा पानी** - पशुओं के चारे में सड़ी-गली चीजें तथा तेज गन्ध युक्त पदार्थ न मिलायें अन्यथा दूध में अवांछित गन्ध उत्पन्न हो जाती हैं। पशुओं के पीने एवं बर्तनों की धुलाई हेतु पानी स्वच्छ तथा शुद्ध होना चाहिए ।

**ब) दूध रखने की विधि**- दूध दुहने के पश्चात दूध को साफ कपड़े या छन्नी से छान लेना चाहिए।छानने के पश्चात यदि दूध को अधिक देर तक रखना है। तो उसे गर्म करके उबाल देना चाहिए। दूध उबालने के पश्चात उसे ठण्डा करके किसी ठण्डे स्थान पर बर्तन से ढककर रखना चाहिए ।

**4) पशुओं की सामान्यबीमारियाँ**

**अ) बीमार पशु के लक्षण** - जब हम बीमार होते हैं तो हमारी कार्य करने की क्षमता घट जाती है। शरीर सुस्त हो जाता है। किसी काम में हमारा मन नहीं लगता है। इसी प्रकार हमारे पालतू पशु भी बीमार होते हैं । पशु अपने रोग के बारे में स्वयं कुछ नहीं बता सकता है। अत: हमको पशुओं के प्रमुख रोग,उनके लक्षण एवं उपचार के बारे में जानना चाहिए -

* पशु का थूथन और मुँह,बीमारहोने पर, सूखे रहते हैं। जबकि स्वस्थ पशु का मुँह व थूथन नम रहता है।

* बीमार पशु चारा खाना धीरे-धीरे बन्द कर देता है। बीमार पशु के कान ढीले होकर लटक जाते हैं।

* बीमारी के समय पशु का गोबर अत्यधिक कड़ा या पतला हो जाता है। ।

पशुओं में होने वाली कुछ प्रमुख बीमारियाँ एवं उनके लक्षण तथा उपचार निम्नवत् हैं-

**i) मुँहपका, खुरपका** - इस बीमारी में पशु के मुँह और खुर पक जाते हैं ।यह बीमारी एक विषाणु के कारण फैलती है। मुँह पक जाने के कारण पशु चारा - दाना नहीं खा पाता है। जिससे वह अत्यन्त कमजोर हो जाता है। इस बीमारी से पशु की मृत्यु सामान्यत: नहीं होती है। परन्तु दुग्ध उत्पादन काफी कम हो जाता है।

**लक्षण -**

* इस बीमारी में पशु को बुखार हो जाता है।

* बीमार पशु के थन, मुँह व खुरों पर छाले पड़कर फूटते हैं जिससे घाव बन जाता है।

* मुँह में छालों के कारण पशु के मुँह से लार टपकती है।

* खुर के पक एवं बढ़ जाने के कारण पशु लगंड़ाने लगता है।

* बीमार पशु चारा खाना बन्द कर देता है। तथा दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है।

**उपचार -**

* स्वस्थ पशु को बीमारी नही इसके लिए पशुओं को टीका लगवाना चाहिए ।

* बीमार पशु को तुरन्त स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए ।

* रोगी पशु का मुँह पका होता है। इस कारण से उसे नर्म और पाचक आहार जैसे- बरसीम,लोबिया,चोकर, चावल का माड़ व अन्य हरी मुलायम घास खिलानी चाहिए ।

* बीमार पशु के छालों को फिटकरी या पोटैशियम परमैगनेट के घोल से दिन में 2,3 बार धोना चाहिए ।

* रोगी पश के खुर के छालों को तूतिया के घोल और फ़िनाइल से धोना लाभदायक होता है।

ii) **अफ़रा**- क्या आपने पेट में गैस होने पर किसी व्यक्ति को बेचैन होते हुए देखा है ?पशुओं के आमाशाय (रुमेंन) में हरे चारे अथवा अनाज के सड़ने से पशु को सांस लेने में कष्ट होता है। यदि आपके पशु को निम्नालिखित लक्षण है। तो उसको अफ़रा बीमारी हो गयी है।

**लक्षण-**

*इस बीमारी में पशु का पेट गैस भरने के कारण फूल जाता है। फूले पेट को थपथपाने पर ढोल की तरह ढब-ढब की आवाज आती है।

*पेट में गैस होने पर फेफ़ड़ो पर दबाव पड़ता है। पशु सांस नहीं ले पाता है,जिससे वह बेचैन होकर कराहने तथा जीभ बाहर निकालकर हाँफने लगता है।

*ज्यादा बीमार होने पर पशु का मूत्र रुक जाता है। इस बीमारी में पशु का तुरन्त उपचार करना चाहिए ।

*शीघ्र उपचार न होने पर पशु प्राय: मर जाता है।

**उपचार**- अफ़रा की प्राथमिक चिकित्सा निम्न तरीके से करना चाहिए -

* एक दो दिन के लिए बरसीम अथवा हरा चारा न खिलायें ।

*एक लीटर तीसी के तेल में 50 ग्राम हर्र व 100 ग्राम काला नमक मिलाकर दो खुराक बनायें तथा प्रत्येक खुराक छ: घंटे के अन्तर पर पिलायें।

* बीमार पशु की चिकित्सा हेतु पशु चिकित्सक की सहायता लेना श्रेयस्कर है।

**iii)पेचिश (खूनी दस्त)**- पेचिश एक सामान्य रोग है। । पेचिश पशुओं को सड़ा गला या बासी और दूषित चारा खाने या दूषित पानी पीने से होती है। अधिक गर्मी या सर्दी लगने से भी कभी-कभी पशुओं को पेचिश हो जाती है। ।

**लक्षण -**

*पेचिश में पशु लाल आँव मिला गोबर करता है।

*पशु के पेट में दर्द रहता है।

*पेचिश से ग्रस्त पशु की पुतली पीली पड़ जाती है।

*गोबर के साथ बिना पचा हुआ चारा भी निकलता है।

**उपचार -**

1) 500 मिली अरंडी का तेल एक बार में पिलाकर पेट की सिकाई करने से पेचिश में लाभ प्राप्त होता है।

2) पेचिश होने पर अपने पशु की चिकित्सा हेतु पशु चिकित्सक से सम्पर्क करना चाहिए ।

**पशु परजीवी**- हमारे पशुओं को परजीवी कीड़े भी बहुत हानि पहुंचाते हैं। परजीवी कीड़े पशुओं का खून चूस लेते हैं। ये कई बीमरियों के फैलने का कारण भी बनते हैं।

परजीवी कीड़े सामन्यत: दो प्रकार के होते हैं -

**अ)बाह्य परजीवी    ब)आन्तरिक परजीवी**

**(अ) बाह्य परजीवी** - बाह्य परजीवी पशु शरीर के बाहरी भाग पर चिपककर अपना भोजन प्राप्त करते हैं जैसे- जूँ,चिल्लर, किलनी तथा जोंक ।

**1)जूँ,चिल्लर,किलनी**- जिस प्रकार गन्दगी रहने के कारण हमारे बालों और कपड़ों में जूँ और चिल्लर पड़ जाते हैं उसी प्रकार ठीक ढंग से सफ़ाई आदि न होने से पशुओं को भी चिल्लर,जूँ ,किलनी आदि पड़ जाते हैं। इन परजीवी जन्तुआें से ग्रसित होने पर पशु अपना शरीर इधर-उधर रगड़ता रहता है।

यदि पशु शरीर में जूँ,चिल्लर, किलनी आदि की संख्या अधिक हो जाती है। तो वह बेचैन रहने लगता है और ऐसा पशु धीरे - धीरे कमजोर हो जाता है।

**उपचार**- बाह्य परजीवी से बचाव हेतु पशुओं के शरीर को ब्यूटाक्स दवा की 5 मिली. मात्रा एक लीटर पानी में मिलाकर बने मिश्रण से धुलते हैं साथ ही कोफेक्यू दवा की दो गोली प्रति पशु प्रतिदिन के हिसाब से खिलाते हैं।पशुओं का उपचार पशु चिकित्सक के परामर्श के अनुसार ही करें।

**2) जोंक** - जब हम किसी गन्दे पानी के तालाब या गड्ढे में देर तक रहते हैं तो अक्सर हमारे पैरों में एक जन्तु चिपक जाता है।खून चूस लेने के बाद अक्सर यह अपने आप छोड़ देता

है। बारीक पिसा नमक डाल देने से इसके शरीर से खून निकलने लगता है और यह मर जाता है। क्या आपको इस जन्तु का नाम पता है ? यह परजीवी जोंक के नाम से जाना जाता है। यही जोंक हमारे पशुओं के मुँह,थूथन या अन्य कोमल अंगों पर चिपटकर उनका खून चूस लेता है। कभी-कभी जोंक बहुत देर तक या कई दिनों तक पशु के शरीर पर उनका खून चूसते रहते हैं।

**(ब)आन्तरिक परजीवी**- ये परजीवी पशु शरीर के भीतरी भागों,आहार नाल,यकृत,खून आदि में रहकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं,जैसे केचुआ (राउन्ड वर्म तथा हुकवर्म ) इत्यदि।

**पेट का केचुआ-** केचुआ हमारे पेट में पाया जाता है। ।जब हम बिना धुले फल और सब्जियां खाते हैं तो केचुए का अण्डा हमारे पेट में चला जाता है। पशुओं में भी केचुए का अण्डा गन्दे चारे तथा संदूषित पानी के साथ आहारनाल में चला जाता है। पशुओं के पेट में विकसित होकर केचुआ छोटी आंत में अपना घर बना लेता है। केचुए से हमारे पशुओं के छोटे बच्चे अधिक प्रभावित होते हैं। बछड़ों का पेट निकल आता है। बछड़े सुस्त एवं कमजोर हो जाते हैं। कभी-कभी पतले दस्त तथा मरोड़ होने लगती है।पशु चारा खाना कम कर देता है। अन्त में उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

**उपचार** - पेट के केचुए से बचाव हेतु प्रौढ़ पशुओं को वर्ष में दो बार मार्च तथा नवम्बर माह में कृमिहर दवायें पिलायी जाती हैं। बच्चे (बछड़ा,बछिया)में प्रथम बार कृमिहर दवाओं का प्रयोग 25 दिन की आयु में किया जाता है। प्रचलित कृमिहर दवाओं में पिपराजीन, नीलवार्म फोर्ट, बेनमिन्थ, निलजान तथा टोलजान दवायें प्रमुख है जिसे पशु चिकित्सक के परामर्श से देना चाहिए ।

**भोजन में दूध का महत्व**

हम सभी अपने भोजन में क्या खाते हैं ? चावल, दाल, विभिन्न प्रकार कीसब्जियाँ, रोटी, मांस, मछली, अंडा, घी, दूध आदि। नवजात शिशु भोजन कैसे ग्रहण करता है ? क्या केवल दूध का सेवन करके भी मनुष्य स्वस्थ्य रह सकता है? हमारे शरीर के पोषण एवं वृद्धि के

लिए मुख्यत: प्रोटीन, वसा, शर्करा , लवण, विटामिन तथा जल की आवश्यकता होती है।ये सभी पदार्थ दूध में उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध हैं । अत: दूध हमारे लिए पूर्ण आहार है।

विभिन्न प्रकार के दूध में पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा

विभिन्न प्रकार के दूध में पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा

| क्रमांक | दूध की किस्म | पानी % | वसा % | प्रोटीन % | दुग्ध शर्करा % | खनिज लवण % |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | गाय का दूध | 86.26 | 4.50 | 3.45 | 4.88 | 0.71 |
| 2. | भैंस का दूध | 82.25 | 7.51 | 5.05 | 4.44 | 0.75 |
| 3. | बकरी का दूध | 85.71 | 4.00 | 4.29 | 4.46 | 0.76 |
| 4. | माँ का दूध | 87.41 | 3.78 | 2.29 | 6.21 | 0.31 |

दूध में उपस्थित वसा तथा शर्करा हमारे शरीर को शक्ति तथा ऊर्जा प्रदान करती है।शरीर की वृद्धि हेतु प्रोटीन काम आती है। देश में शाकाहारी लोगों हेतु पशु प्रोटीन का एक मात्र स्रोत दूध ही है।

## स्वच्छ दुग्ध उत्पादन

कभी-कभी दूध क्यों फट जाता है? जब जीवाणु किसी प्रकार दूध में पहुँच जाते हैं तो वे बड़ी तेजी से बढ़ते हैं और सारे दूध को दूषित कर देते हैं। दूध जीवाणुआें की वृद्धि के लिये सर्वोत्तम माध्यम है।इन्हीं जीवाणुआें की वृद्धि के कारण दूध में अम्लता बढ़ जाती है और दूध फट जाता है।

## स्वच्छ दूध के गुण

अ) जिस दूध में धूल व गन्दगी न हो ।

ब) जीवाणुआें की न्यूनतम संख्या हो ।

स) अवांछनीय गन्ध न हो ।

द) अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सके ।

स्वच्छ दूध का तात्पर्य उस दूध से है, जो स्वस्थ पशु से स्वस्थ वातावरण में प्राप्त हो और जिसमें जीवाणुआें की संख्या न्यूनतम हो।

**संदूषित दूध से फैलने वाली बीमारियाँ**- संदूषित दूध के सेवन (उपयोग) से हम विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। संदूषित दूध से टी.बी.( क्षय रोग)एन्थ्रैक्स, टायफ़ायड, पेचिश, दस्त, कालरा तथा डिप्थीरिया जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं। अत: इन बीमरियों से बचाव हेतु हमें स्वच्छ दूध ग्रहण करना चाहिए ।

**पशुओं की उन्नत नस्लें**

गाय पालन- भारत में गाय की लगभग 20 उन्नतशील नस्लें पायी जाती हैं ।हम इन नस्लों को उनकी उपयोगिता के आधार पर तीन वर्गो में बांट सकते हैं ।

1)**दुधारु गाय की नस्लें** - इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली नस्ल के गायों की दुग्ध उत्पादन क्षमता अधिक होती है।परन्तु बछड़े कृषि कार्य एवं बोझा ढोने हेतु उपयुक्त नहींहोते हैं ।इस वर्ग में साहीवाल,सिन्धी,जर्सी तथा फ्रिजियन नस्लें प्रमुख हैं।

2)**द्विकाजी गाय की नस्लें** - इस वर्ग के नस्ल की गायें दूध अधिक देती हैं साथ ही साथ इनके बछड़े कृषि कार्य एवं बोझ ढोने में उपयोगी होते हैं। इसमें हरियाणा,थारपारकर,गंगातीरी प्रमुख हैं ।

3)**भारवाही गाय की नस्लें** - वे नस्लें जो दूध तो अधिक नहीं देती परन्तु इनके बछड़े कृषि कार्य और बोझा ढोने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं । इस वर्ग में मुख्यत: खेरी गढ़, नागौरी, पंवार तथा अमृतमहल आदि प्रमुख हैं।

**गाय की नस्लें-**

**गाय की नस्लें—**

| नस्लें | मूल स्थान | पहचान हेतु विशेषतायें | औसत वजन (किग्रा) |
|---|---|---|---|
| साहीवाल | मोंटगोमरी (पाकिस्तान) | भारी भरकम शरीर , छोटी टांगे,पतली एवं ढीली ढाली चमड़ी (खाल), चौड़ा माथा, छोटे और मोटे सींग, लालिमा लिए हुए भूरा रंग लम्बी पूछ तथा बड़े—बड़े थन औसतदुग्ध 1718 किग्रा0 / ब्यांत मँझोला आकार एवं गठीला | मादा — 408<br>नर — 544 |
| सिन्धी | पाकिस्तान का सिंध तथा कराची क्षेत्र | शरीर मोटा, सींग लाल रंग, मध्यम आकार के लटकते हुए कान, बड़ा थन, बड़ा गल कम्बल तथा लम्बी काली पूँछ। औसत दूध उत्पादन 1606 किग्रा / ब्यांत | मादा — 320<br>नर — 454 |
| हरियाणा | रोहतक, हिसार एवं करनाल (हरियाणा) | लम्बा सुव्यवस्थित एवं ठोस शरीर, छोटे सींग, रंग सफेद तथा हल्का धूसर, लम्बा पतला चेहरा, छोटे नुकीले और चौकन्ने कान, सुगठित थन औसत दुग्ध उत्पादन 1136 किग्रा0 / ब्यांत अच्छे बैलों के लिए प्रसिद्ध नस्ल। | मादा — 354<br>नर — 500 |
| गंगातीरी | बलिया जिले का गंगा और घाघरा नदियों का दोआबा | नाक की ओर नुकीला, लम्बा सिर और चौड़ा ललाट, छोटी और मोटी गर्दन, मोटे सींग, चमकीली आँखे, पूर्ण विकसित थन, काली झब्बे युक्त टखनों तक लटकती पूँछ | मादा — 272<br>नर — 350 |
| खेरीगढ़ | खीरी जिले का खेरीगढ़ परगना | सफेद रंग, छोटा पतला चेहरा, चमकीली आँखे, छोटे — छोटे चौकन्ने कान, सफेद झब्बे युक्त लम्बी पूँछ, दुग्ध उत्पादन एक किग्रा प्रतिदिन। | मादा — 320<br>नर — 410 |
| केनबरिया (केनकथा) | बाँदा जिले में केन नदी के तटवर्ती भागों में | शरीर छोटा, गठीला और गहरा, सीधी पीठ, छोटा चौड़ा सिर व छोटे —छोटे बलिष्ठ पैर, मध्य आकार का गलकम्बल, मजबूत नुकीले सींग व छोटे—छोटे नुकीले कान, पेट का रंग धूसर और शेष शरीर गहरा धूसर। | साँड़ — 350<br>गाय — 295 |
| जर्सी | जर्सी द्वीप समूह (इंग्लैंड) | इस जाति का रंग हल्का लाल, सफेद धब्बे युक्त, शरीर विकसित एवं चुस्त होता है। सींग छोटे तथा अन्दर की ओर झुके हुए होते हैं। एक ब्याँत में 4600 लीटर दूध देती है। दो से ढाई साल में पहला बच्चा दे देती है। नथुने बड़े एवं सिर पीठ तथा कन्धा एक लाइन में होते हैं। | नर — 650 —675<br>मादा— 425 — 450 |
| होल्स्टीन फ्रीजियन, | इस जाति का मूल नीदरलैण्ड में फ्रिजलैण्ड प्रान्त को माना जाता है। | इस गाय का रंग काला व श्वेत कम या अधिक अनुपात में होता है। शरीर भारी होता है, कूबड़ नहीं होता है, थूथन चौड़ा, नथुने खुले हुए एवं जबड़े मजबूत होते हैं। एक ब्याँत में अधिकतम 6500 लीटर दूध देती है। यह गाय दो साल की आयु में प्रथम बच्चा देती है। | |

**चित्र 4.2 साहीवाल गाय**

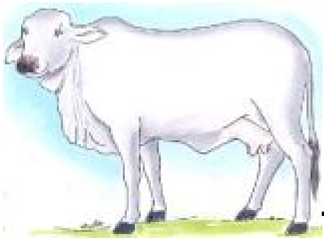
चित्र 4.3 सिन्धी गाय

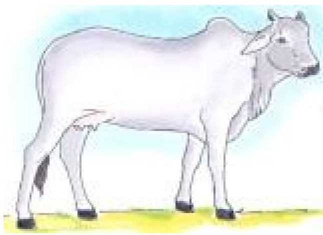
चित्र 4.4 हरियाणा गाय

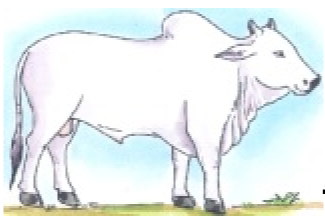
चित्र 4.5 गंगातीरी साँड़

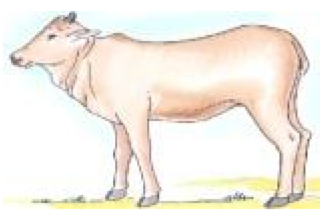
चित्र 4.6 खेरी गढ़ गाय

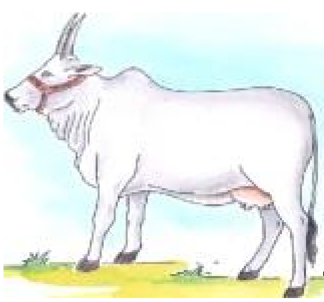
चित्र 4.7 कैनकथा गाय

चित्र 4.8 जर्सी गाय

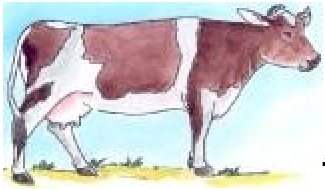
**चित्र 4.9 हैल्स्टीनफ्रिजियन गाय**

**भैंस पालन** - देश में कुल जितना दूध पैदा होता है। उसका 55 प्रतिशत भाग भैंस से प्राप्त होता है। ।भैंस का औसत दुग्ध उत्पादन भारतीय गाय की तुलना में अधिक है तथा भैंस के दूध में वसा की मात्रा भी अधिक होती है। गाँवों में किसान गाय की तुलना में भैंस पालना अधिक पसन्द करते हैं ।भारत में भैंस की कुछ प्रमुख नस्लें पायी जाती है। जिसमें मुर्रा,भदावरी,सुरती,मेंहसाना तथा जाफरावादी आदि प्रमुख हैं ।

**भैस की नस्लें–**

| नस्ल | मूल स्थान | पहचान हेतु विशेषतायें | औसत वज़न (किग्रा) |
|---|---|---|---|
| मुर्रा | दिल्ली, हरियाणा, पंजाब | काला रंग, भारी गठीला शरीर, चक्करदार मुड़े हुए सींग, छोटा सिर और पतला गर्दन पूर्ण विकसित थन, छोटी, बलिष्ठ और लम्बी पूंछ, औसत दुग्ध उत्पादन 6 से 8 लीटर प्रतिदिन | मादा – 431<br>नर – 567 |
| भदावरी | भदावरी क्षेत्र (आगरा) | छोटा सिर जो सींगों के मध्य में उभरा होता है। तांबे जैसा रंग, काले खुर, छोटा पैर, लम्बी सफेद पूँछ, चपटे ठोस सींग, चमकदार आँख मध्यम आकार के कान व पतली गर्दन, दूध में वसा की मात्रा सर्वाधिक औसत दुग्ध उत्पादन 1100 किग्रा प्रति ब्यॉत। | मादा – 385<br>नर – 476 |
| सुरती | आनन्द (बड़ौदा) | काला भूरा रंग, मध्यम आकार, हंसिये जैसी सींग, पूंछ, सफेद, झब्बे युक्त, औसत दुग्ध उत्पादन 1772 किग्रा प्रति ब्यॉत | मादा – 408<br>नर – 499 |
| मेंहसाना | गुजरात | मुर्रा नस्ल से भारी भरकम शरीर, हल्के पैर, लम्बा सिर, सींगे किनारों पर मुड़ी हुई, सुगठित थन, औसत दुग्ध उत्पादन 1744 किग्रा प्रति ब्यॉत | मादा – 431<br>नर – 569 |
| जाफरीबादी | काठियावाड़ क्षेत्र | लम्बा शरीर, काला रंग, सींगे गर्दन की तरफ मुड़ी हुई, पूर्ण विकसित थन, औसत दुग्ध उत्पादन 1362 किग्रा प्रति ब्यॉत | मादा – 414<br>नर – 560 |

**बकरी पालन -** बकरी उपयोगी पशु है जिससे हमें दूध एवं मांस दोनों प्राप्त होते है। कुल दुग्ध उत्पादन में बकरी के दूध का हिस्सा सिर्फ 3% है, परन्तु गुणवत्ता के दृष्टिकोण से

बकरी का दूध सर्वोत्तम होता है। बकरी एक ऐसा पालतू पशु है जिसे कम से कम खर्च में पालकर लाभ कमाया जा सकता है। इसी कारण राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने बकरी को निर्धन (गरीब) की गाय कहा ।

भारत में बकरियों की कई नस्लें पायी जाती हैं परन्तु उत्तर प्रदेश में पायी जाने वाली प्रमुख नस्ले हैं, जमुना पारी, बरबरी तथा ब्लैक बंगाल आदि ।

**बैकरियों की नस्लें–**

| नस्ल | मूल स्थान | पहचान हेतु विशेषतायें | औसत वजन (किग्रा) |
|---|---|---|---|
| यमुनापारी | यमुना, गंगा और चम्बल नदी के तटवर्ती क्षेत्र | माथा चौड़ा एवं उभरा, बकरों में दाढ़ी पायी जाती है। कान 25–30 सेमी0 लम्बे एवं लटके हुए शरीर पर काले व भूरे धब्बे । शरीर की उपेक्षा पिछली टाँगों पर घने लम्बे बाल। | दूध एवं माँस हेतु। मादा – 50 किग्रा0 वजन<br><br>नर – 75 किग्रा वजन |
| बरबरी | दिल्ली, हरियाणा एटा, आगरा | नाटा कद, कान छोटा, अधिकांशतः सफेद व भूरी, शरीर की अपेक्षा पैर छोटे, इन्हें घर में बांधकर भी पाला जा सकता है। पूर्ण विकसित थन, औसत दुग्ध उत्पादन एक किग्रा प्रति दिन | माँस हेतु सर्वाधिक प्रचलित<br>मादा –32 किग्रा<br>नर – 41 किग्रा |
| ब्लैक बंगाल | पश्चिम बंगाल | छोटे पैर वाली, सर्वोत्तम माँस, जुड़वाँ बच्चे देने वाली, चौड़ा सीना, कान उठे हुए, मुलायम बाल, काला रंग, परिपक्व होने पर औसत वजन 25 किग्रा | माँसहेतु उपयोगी |

**सुअर पालन** - पहले सुअर पालन एक विशेष जति द्वारा ही अवैज्ञानिक ढंग से किया जाता था । अब इस व्यवसाय के लाभ को देखते हुए बहुत से लोग सुअर पालन की ओर आकृष्ट होने लगे हैं। सुअर, मांस-उत्पादन हेतु पाला जाता है। आधुनिक सुअर पालन व्यवसाय में सुअर की विदेशी नस्लें यथा लार्ज व्हाइट योर्कशायर तथा लैन्ड्रेस मुख्यत: प्रचलन में हैं ।

**सुअर की नस्लें –**

| नस्ल | शरीर बनावट | औसत वजन (किग्रा) |
|---|---|---|
| लार्ज व्हाइट यॉर्कशायर(इंग्लैंड की नस्ल) | लम्बा सिर, चौड़ी थूथन, लम्बे पतले आगे की ओर छोटे धब्बे हो सकते हैं, बिना झुर्री के पतली चमड़ी तथा उच्च प्रजनन क्षमता | नर – 300 – 400<br>मादा – 230 – 320 |
| लैन्ड्रेस, डेनमार्क की नस्ल | लम्बा थूथन, लटके कान, मझोला आकार, छोटी टाँगे, सफेद रंग काले धब्बे युक्त | नर – 300 – 350<br>मादा – 200 – 250 |

**मुर्गी पालन**- विगत कई वर्षो से मुर्गी पालन एक लाभप्रद व्यवसाय के रूप में फल -फूल रहा है।मुर्गियों से हमें अण्डा एवं मांस प्राप्त होता है। मुर्गियों की प्रमुख नस्लों में प्लाईमाउथ राक, बह्मा,लेगहार्न तथा मिनोरका है।

मुर्गीयों की प्रमुख नस्लें –

| | औसत वजन (किग्रा) | | कलगी का प्रकार | चमड़ी का रंग | टखने का रंग | अण्डे का रंग |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | मुर्गा | मुर्गी | | | | |
| ...थ राक | 4.2 | 3.4 | एकल | पीला | पीला | भूरा |
| | 5.0 | 4.0 | मटर की पत्ती जैसी आकृति | पीला | पीला<br>टखने पर छोटे–छोटे पंख पीला | भूरा |
| | 2.7 | 2.0 | एकल / बहुखण्डित | पीला | गहरा स्लेटी रंग | सफेद |
| | 3.8 | 3.4 | एकल / बहुखण्डित | सफेद | | सफेद |

## अभ्यास के प्रश्न

1) सही विकल्प के सामने (√) का चिन्ह लगाइये ।

**i) गरीब की गाय कहलाती है। -**

क) गाय ख) भैंस

ग) भेड़ घ) बकरी

**ii) संदूषित दूध से फैलने वाली बीमारी है। -**

क) एड्स ख) कैंसर

ग) टी0 वी0 घ) पोलियो

**iii) गाय की नस्ल नहीं है। -**

क) गंगातीरी ख) मिनोरका

ग) नागौरी घ) भदावरी

**iv) सिन्धी गाय है। -**

क) दुधारू गाय की नस्ल ख) दुकाजी गाय की नस्ल

ग) भारवाही गाय की नस्ल घ) भैंस की नस्ल

**v) स्वच्छ दूध में होना चाहिए -**

क) न्यूनतम जीवाणु ख) अवांछनीय गन्ध

ग) अधिक वसा घ) कम पानी

**vi) सबसे मीठा दूध होता है। -**

क) गाय का दूध ख) भैंस का दूध

ग) बकरी का दूध घ) माँ का दूध

**2)निम्नालिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।**

क) पुआल और भूसा.............सूखा चारा है।

ख) .............प्रजनन की आधार शिला है।

ग) केचुए को प्रकृति का .............कहते हैं।

घ)  मुँहपका खुरपका बीमारी............से फैलती है।

ङ)  जोंक एक............परजीवी जन्तु है।

च)  दूध में मिठास............के कारण होती है।

छ)  अमृतमहल............गाय की नस्ल है।

ज)  दूध एक............आहार है। ।

**3) निम्नालिखित कथनों में सही पर (√)  तथा गलत पर (x) का निशान लगाइये ।**

क)गाय के दूध का पीला रंग कैरोटीन के कारण होता है।(   )

ख)वरण का तात्पर्य आनिच्छित पशुओं को अलग करना है। (     )

ग)भ्रूण प्रत्यारोपण तकनीक से एक वर्ष में एक ही गाय के 10-12 बच्चे प्राप्त किये जा सकते हैं ।( )

घ)मक्का दलहनी चारा है।(   )

ङ)पूर्ण हस्त दोहन, दूध दोहन की सर्वोत्तम विधि है। ()

च)पशु के थूथन व मुँह का नम रहना उसके बीमार रहने का लक्षण है। (        )

छ)देश में कुल दुग्ध उत्पादन का 55% हिस्सा गाय से प्राप्त होता है।(    )

4)दूध क्यों फटता है। ?

5)यदि आपकी भैंस प्रतिदिन 10 लीटर दूध देती है। तो उसे आप जीवन निर्वाह एवं दुग्ध उत्पादन हेतु कुल कितने किग्रा दाना प्रतिदिन खिलायेंगे ?

6)आपकी गाय अफ़रा रोग से ग्रसित है, तो आप क्या करेंगे ?

7)यदि बछड़े के मल (गोबर) में गोल कृमि (पेट का केचुआ) है। तो इससे बचने हेतु क्या उपाय करेंगे ?

8)किन्हीं दो नस्लों के गाय के चित्र बनाइए और उनमें दो अन्तर बताइये।

**9)स्तम्भ `क' एवं स्तम्भ `ख' में दिए गये तथ्यों का सही-सही मिलान कीजिए-**

| **स्तम्भ `क'** | **स्तम्भ `ख'** |
|---|---|
| मुँहपका-खुरपका | पेट मे गैस हो जाना |
| जुकाम या बुखार | विषाणु |
| अफ़रा | सड़ा-गला दूषित चारा या पानी |
| पेचिस (खूनी दस्त) | ठण्ड लगना |

10) पशुधन विकास क्यों आवश्यक है। ? पशुधन विकास की विधियाँ लिखिए ।

11) आहार किसे कहते हैं ? आहार कितने प्रकार का होता है। उत्पादन आहार के बारे में लिखिए ।

12) स्वच्छ दूध किसे कहते है। ? दूध में संदूषण के स्रोतों का उल्लेख कीजिए ।

13) बीमार पशु के लक्षण लिखिए तथा किसी एक बीमारी का वर्णन कीजिए ।

14)

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ज | ना | पं | वा | र | गं |
| सीं | गौ | सिं | धी | ह | गा |
| खे | री | ग | ड़ | रि | ती |
| के | न | ब | रि | या | री |
| प्री | जि | य | न | गा | |
| घा | र | पा | र | ह | र |

back

# इकाई - 5 बागवानी एवं वृक्षारोपण

HHC99B

- **बाग लगाते समय ध्यान देने योग्य बातें**
- **बाग के लिए स्थान का चयन**
- **पूर्व योजना, पौधे लगाना**
- **विभिन्न फलदार वृक्षों की दूरी**
- **बाग लगाने की विधियाँ**
- **कायिक प्रवर्धन की विधियाँ - कलम बाँधना, चश्मा लगाना**
- **शाक वाटिका का अर्थ, शाक वाटिका के लिए ध्यान देने योग्य बातें तथा महत्त्व**
- **वृक्षारोपण का अर्थ एवं महत्व**

विस्तृत क्षेत्र में वैज्ञानिक ढंग से फलों,सब्जियों तथा फूलों की खेती को बागवानी कहते हैं। वर्तमान में बागवानी आमदनी का अच्छा स्रोत बन गयी है।किसान बागवानी से सम्बन्धित विभिन्न फसलों की खेती करके अच्छी आय प्राप्त कर रहें हैं। इसके अतिरिक्त बागवानी,फसलों का कृषि विविधीकरण में विशेष महत्त्व है।पर्यावरण संतुलन बनाए रखने तथा रोजगार सृजन में इसकी विशेष भूमिका है।

**बागवानी को मुख्यतः तीन भागों में विभक्त किया गया है।**

1 पुष्पोत्पादन- फूलों की खेती।

2 सब्जी उत्पादन- सब्जियों की खेती।

3 फलोत्पादन- फलों की खेती।

यहाँ हम फलों की बागवानी का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

**बाग लगाते समय ध्यान देने योग्य बातें**

बाग की स्थापना करना एक विवेक पूर्ण कार्य है क्योंकि बाग स्थापित होने के बाद उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। किसी भी प्रकार की त्रुटि आन्तिम समय तक बनी रहती है।परिणाम स्वरूप उपज प्रभावित होती है।बाग लगाते समय निम्नालिखित बिन्दुआें पर ध्यान देना आवश्यक है।

- स्थान का चयन
- जलवायु
- सिंचाई की सुविधा
- जल निकास की सुविधा
- यातायात की सुविधा
- बाजार की निकटता
- कुशल श्रमिक की उपलब्धता आदि।

**बाग लगाने के लिए स्थान का चयन**

1)**भूमि की किस्म** - नया बाग लगाने के लिए यह आवश्यक है कि भूमि समतल हो तथा जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो । बाग लगाने के लिए दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। बलुई दोमट तथा चिकनी दोमट मिट्टी में भी बाग सफलता पूर्वक लगाया जा सकता है।

2)**सिंचाई की सुविधा** - फल वृक्षों की सुचारु रूप से वृद्धि के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी की व्यवस्था होनी चाहिए जहाँ पानी कम उपलब्ध हो वहाँ सिंचाई के रूप में टपक सिंचाई (Drip Irrigation) का प्रयोग करते हैं ।यह सिंचाई की उत्तम विधि है इसमें जल की बचत होती है तथा फलों की गुणवत्ता बढ़ जाती है।

3)**जल निकास की व्यवस्था**- बाग का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वर्षा ऋतु में पानी न रुके। जल रुकने पर फलवृक्ष ठीक से नहीं पनपते हैं। इसलिए जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिए ।

**4) यातायात की सुविधा**- फल-वृक्षों से फल लेने के बाद फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए यातायात की सुविधा होनी चाहिए। जिससे फलों को बाजार तक आसानी से पहुँचाया जा सके।

**5) बाजार की निकटता** -बाजार ,बाग से निकट होना चाहिए जिससे बाग से प्राप्त फलों को आसानी से बेचा जा सके ।

**6) जलवायु**- फल का बाग लगाते समय जलवायु का ध्यान देना आवश्यक है।जलवायु के अनुसार ही फल वृक्षों का चयन करना चाहिए जैसे- उष्ण कटिबन्धीय जलवायु वाले फलवृक्ष आम,अमरूद,केला,पपीता, नींबू,आँवला आदि हैं। तराई क्षेत्रों की उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु के फल लीची, नाशपाती,कटहल, आम, पपीता आदि हैं । जब कि शीतोष्ण क्षेत्रों के लिए उपयोगी फल सेब, चेरी, आड़ू , अलूचा, नाशपाती आदि हैं। इस प्रकार अच्छे फल वृक्षों के लिए स्थान का चयन जलवायु के अनुसार किया जाना चाहिए।

**7) ईंट भट्ठों से दूरी**- कोई भी बाग ईंट भट्ठे से लगभग 1 किमी दूरी पर लगाना चाहिए, क्योंकि इससे निकलने वाले धुएँ से फलों में कोयलिया (Black Tip) रोग लग जाता है।

**8) जंगल से दूरी**- बाग हमेशा जंगल से दूर लगाने चाहिए जिससे जंगली जानवरों से होने वाली क्षति से बाग को बचाया जा सके ।

**9) सहकारी समितियाँ तथा कुशल मजदूर की उपलब्धता** - बाग के नजदीक सहकारी समितियों का होना आवश्यक है। इससे फल विपणन में सुविधा होती है। ।साथ ही कुशल अनुभवी मजदूर उपलब्ध होने से खेती में कृषि कार्य से लेकर फल तोड़ाई तक किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं होती है।सहकारी समितियाँ होने पर लोग एक दूसरे के अनुभवों का लाभ उठाते हैं ।

10) बाग के लिए चयनित क्षेत्र में कीट एवं बीमारियों का प्रकोप नहीं होना चाहिए ।

**पूर्व योजना बनाकर पौधे लगाना**

मृदा भूमि का चयन करने के बाद पौधे लगाने के पहले कुछ प्रारम्भिक तैयारियों की आवश्यकता होती है, जो निम्नालिखित हैं-

1) **भूमि को समतल करना** - भूमि ऊँची नीची अथवा ढालू होने पर उसे समतल कर लेना चाहिए । भूमि समतल नहीं होने से वर्षा ऋतु में मृदा कटाव होने की संभावना बनी रहती है। ।

2) **भूमि में खाद डालना** - समतल भूमि में गर्मी के दिनों में जुताई करके सड़ी गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद मिला देना चाहिए।

3) **पानी का प्रबंध करना** - बाग लगाने से पहले सिंचाई का प्रबन्ध होना चाहिए। इसके लिए जहाँ नहर की व्यवस्था नहीं है वहाँ नलकूप की व्यवस्था होनी चाहिए ।

4) **जंगली जानवरों तथा अनावश्यक प्रवेश को रोकना** - जंगली जानवरों को रोकने के लिए बाड़ लगाना चाहिए इसके लिए स्थाई रूप से दीवार या कटीले तारों का प्रबन्ध होना चाहिए या नागफ़नी या राग बांस, करौंदा इत्यदि की बाड़ लगा देनी चाहिए ।

5) **वायु रोधी पौधे लगाना** - फलदार वृक्षों को आँधी तूफान के अलावा लू तथा ठण्डी हवाएं काफी हानि पहुँचाती हैं। इसके नियंत्रण के लिए बाग के उत्तर-पश्चिम दिशा में ऊँचे उठान वाले पेंड़ लगाकर बाग को बचाया जा सकता है। देशी आम,शीशम,महुआ,यूकेलिप्टस आदि वृक्ष वायुरोधी के रूप में लगाए जाते हैं।

6) **श्रमिक आवास एवं सड़को का निर्माण** - बाग में सुविधा पूर्वक कार्य करने तथा बाग के हर भाग में पहुँचने के लिए सड़क तथा रास्ते बना देना चाहिए । बाग में श्रमिक आवास की भी व्यवस्था करनी चाहिए ।

7) **जल निकास का प्रबंध**- बाग में वर्षा या बाढ़ का पानी न रुक सके इसके लिए भूमि की ढाल के अनुसार जल निकास की नालियाँ बना लेनी चाहिए ।

8)**क्षेत्रों का विभाजन**- अलग-अलग प्रजति के फलों के पकने के अनुसार क्षेत्र का विभाजन यथा स्थान कर लेना चाहिए।

**9 खाद के गड्ढे** - बाग में गड्ढे निकास स्थान से दूर, दक्षिण दिशा में बना लेने चाहिए ।इसके लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जहां बाग का कूड़ा करकट, सूखी पत्ती, पशुओं का मल-मूत्र सुगमता से पहुँचाया जा सके ।

## विभिन्न फलदार वृक्षों की दूरी

बाग में पौधे सघन अवस्था में लगाने से शुरु में अच्छी पैदावार होती है।लेकिन बाद में फल वृक्षों के घने होने से पैदावार कम हो जाती है। घने बाग होने से सूर्य का प्रकाश सभी पौधों को ठीक से नहीं मिल पाता है। जिससे पैदावार पर विपरीत प्रभाव है।विभिन्न फलदार वृक्षों की दूरी उस फल की किस्म के ऊपर निर्भर करती है।मिट्टी की किस्म, सिंचाई की सुविधा के ऊपर भी निर्भर करती है। इस तरह विभिन्न फल वृक्षों के बीच की दूरी अलग-अलग होती है कुछ फल वृक्षों के लगाने की दूरी निम्नवत् है। -

| फल वृक्ष | पौधों की दूरी मीटर में |
| --- | --- |
| आम | 10 X 10 मीटर |
| लीची | 9 X 9 मीटर |
| पपीता | 3 X 3 मीटर |
| अमरूद | 8 X 8 मीटर |
| अंगूर | 3 X 3 मीटर |
| सेब | 6 X 6 मीटर |
| बेर | 7.5 X 7.5 मीटर |
| केला | 3 X 3 मीटर |
| कटहल | 10 X 10 मीटर |
| आँवला | 9 X 9 मीटर |
| नींबू | 6 X 6 मीटर |

## बाग लगाने की विधियाँ

बगीचे में वृक्ष लगाने का कार्य अत्यन्त ही आवश्यक है।पौधों को बाग में लगाते समय किसी भी प्रकार की गलती होने पर उसकी सजा अन्तिम समय तक भोगनी पड़ती है।इसलिए पेंड़

लगाने का कार्य सूझ-बूझ से करना चाहिए। बाग लगाने की जानकारी **जिला उद्यान अधिकारी कार्यालय** से लेनी चाहिए ।

**पौधे लगाने का समय** - बाग में पौधे लगाने का सबसे अच्छा समय जुलाई से अगस्त का महीना होता है। । पतझड़ वाले पेड़ों को दिसम्बर से फरवरी महीने तक लगाना ठीक रहता है।पौध लगाने से पहले रेखांकन करना आवश्यक है।

उद्यान का अच्छा रेखांकन वही कहा जाता है। जिससे बाग के प्रत्येक फलवृक्ष को वृद्धि करने के लिए उचित स्थान मिल सके। भूमि में अधिक से अधिक पौधे लग जायें। यदि बाग में एक से अधिक फलवृक्ष लगाने हों तो प्रत्येक फलवृक्ष अलग-अलग स्थान में लगाना चाहिए।फलों की देखभाल तथा तोड़ने की सुविधा के लिए एक ही साथ पकने वाले फलों को एक स्थान पर लगाना चाहिए। जहाँ तक हो सके फल वृक्षों को एक सीधी रेखा में लगाना चाहिए । बाग लगाने की विधियाँ निम्नालिखित हैं-

**1)वर्गाकार विधि** - बाग में पौधे लगाने की यही विधि सबसे अच्छी और सरल विधि है।इस विधि में पंक्ति और पौधे की आपसी दूरी बराबर होती है।इस विधि में दो पंक्तियों के चार पौधे आपस में मिलकर एक वर्ग बनाते हैं ।

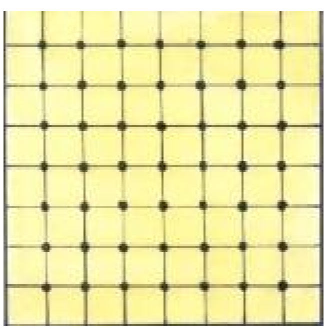

**चित्र 5.1वर्गाकार विधि**

**2)आयताकार विधि**-इस विधि में पौधे वर्गाकार विधि की तरह ही लगाये जाते हैं अन्तर केवल इतना रहता है कि पंक्ति से पंक्ति की दूरी,पौधों की आपसी दूरी से अधिक होती है। जिससे वृक्षों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। इस विधि में चार पौर्धो को आपस में मिलाकर एक आयताकार आकृति का निर्माण होता है।

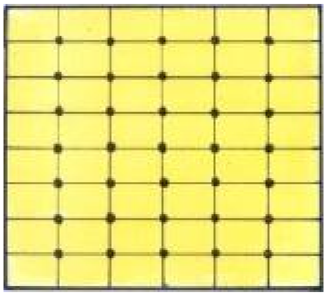

**चित्र 5.2 आयताकार विधि**

**3) त्रिकोण विधि**- इस विधि में पौधे वर्गाकार विधि के समान लगाये जाते हैं। अन्तर केवल इतना रहता है। कि दूसरी पंक्ति में पौधों को पहली पंक्ति के पौधों के सामने न लगाकर उनके बीच त्रिकोण रूप में लगाते हैं। इस विधि में वर्गाकार विधि की अपेक्षा कुछ अधिक पौधे लगाये जाते हैं। इस विधि में दो पंक्तियों के तीन वृक्ष मिलकर एक समद्विबाहु त्रिभुज का निर्माण करते हैं ।

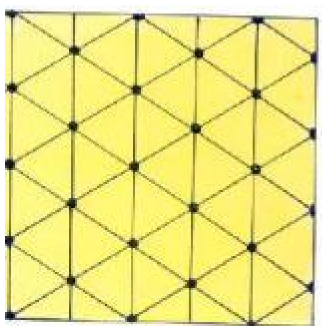

**चित्र 5.3 त्रिकोण विधि**

**4) पंचभुजाकार विधि** - यह विधि भी वर्गाकार पद्धति के समान है। इसका रेखांकन वर्गाकार की तरह होता है।इस विधि में, चार पौधों के मध्य में एक पौध लगाया जाता है जो अस्थाई होता है इसे स्थाई वृक्षों के बड़ा हो जाने पर हटा दिया जाता है। इस विधि को **पूरक विधि** भी कहते हैं।

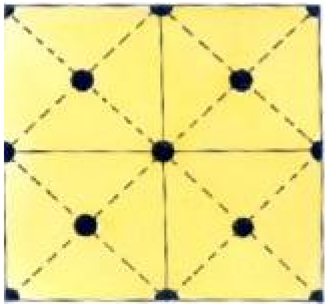

**चित्र 5.4 पंचभुजाकार विधि**

**5)षट्कोण विधि**- यह विधि त्रिकोण विधि के समान होती है। इसमें वर्गाकार विधि की अपेक्षा 15% पौधे अधिक लगाये जाते हैं इस विधि में पेंड़ **षट्कोण रूप** में दिखाई देते हैं। यह विधि शहर के पास की भूमि के लिए उपयुक्त होती है।इस विधि में छ:वृक्ष आपस में मिलकर एक षटभुजाकार आकृति तैयार करते हैं तथा सातवां वृक्ष इनके बीच में होता है। इस विधि में बाग कुछ घना हो जाता है इस विधि को **समद्विबाहु त्रिभुज** विधि के नाम से भी जाना जाता है।

**कायिक प्रवर्धन की विधियाँ**

पौधे के किसी भी वानस्पतिक भाग से नये पौधे तैयार करना कायिक प्रवर्धन कहलाता है। कायिक प्रवर्धन कई प्रकार से किया जा सकता है। यथा तना एवं जड़ कर्तन, कलिकायन, कलम बाँधना, कन्द, प्रकन्द, घनकन्द, पत्ती कर्तन आदि।

**चश्मा लगाना**

इस विधि में सर्वप्रथम मूलवृन्त तैयार किये जाते हैं। जब ये पेन्सिल की मोटाई के आकार के हो जाते हैं। तब वांछित कलिका लाकर, जमीन से 15 सेमी। ऊपर मूलवृन्त में चाकू से चीरा लगाकर कलिका को इस प्रकार प्रवेश कराया जाता है कि आँख बाहर की ओर निकली रहे। अब 100 गेज पालीथीन की पट्टी से आँख को छोड़ते हुए बाँध देते हैं, जिससे कलिका अपने स्थान पर टिकी रहे। इस प्रक्रिया के बाद मूलवृन्त की चोटी को तिरछा काट देते हैं। लगभग अध्यारोपित कलिका एक माह बाद  प्रस्फुटित होकर शाखा बनाती है। इस नई पौध को छः माह बाद खोद कर वांछित स्थान पर रोपण कर दिया जाता है।

**कलम बाँधना**

इस विधि में सर्वप्रथम मूलवृन्त तैयार कर लिये जाते हैं। जब इनका तना पेन्सिल के मोटाई का हो जाता है तो वाँछित सांकुर डाली लाकर मूलवृन्त पर आवश्यक प्रक्रिया पना कर बाँध दी जाती है। इस विधि को कलम बाँधना कहते हैं।

जिस सांगुर डाली को मूलवृन्त पर रोपित करना हो वह तीन माह से पुरानी न हो तथा रोपण से पहले इस सांकुर डाली से पत्तियों को काटकर हटा देना चाहिए। साकुर डाली की मोटाई मूलवृन्त के समान होनी चाहिए। 15 सेमी। लम्बी सांकुर डाली से खूँटी  बना लेते हैं।  अब मूलवृन्त को 30 सेमी। ऊपर से काटकर हटा देते हैं तथा ऊपर कटे हुए भाग के बीच में 2.5सेमी गहरा चीरा लगाकर सांकुर डाली को प्रवेश करा देते हैं फिर पालीथीन की पट्टी से मजबूती से इस सन्धि को बाँध देते हैं। एक माह बाद सांकुर डाली से नई शाखा निकलती है और इस प्रकार नया पौधा तैयार हो जाता है।  अब इसे वाँछित स्थान पर रोपित कर देते हैं।

**शाक वाटिका**

अपने निवास स्थान के आस-पास या घर के अहाते के अन्दर सब्जियाँ उगाई जाती हैं। उसे ही हम शाक वाटिका कहते हैं। शाक का अर्थ होता है साग -सब्जी तथा वाटिका का अर्थ होता है  छोटा सा उद्यान अर्थात साग-सब्जी उद्यान। इस प्रकार की वाटिका में घरेलू स्तर पर सब्जियाँ उगाई जाती हैं। इसे हम गृह वाटिका या रसोई उद्यान (किचन गार्डन) के नाम से भी जानते हैं । इसमें घर के सदस्यों के उपयोग के लिए सब्जियाँ उगाई जाती हैं।

**शाक वाटिका लगाने का उद्देश्य**

*परिवार के लोगों को पूरे वर्ष ताजी सब्जियों की आपूर्ति करना।

*बाजार की तुलना में घर में उगाई गई सब्जियाँ सस्ती पड़ती हैं जिससे कुछ आर्थिक बचत होती है।

*शाक वाटिका में काम करना अधिकांश लोगों को अच्छा लगता है। इस प्रकार इसमें रुचि रखने वाले घर के सदस्यों तथा अवकाश प्राप्त व्यक्तियों को मनोरंजन तथा खाली समय के सदुपयोग का अवसर मिलता है।

*विद्यालय जाने वाले बालक-बालिकाआें को बागवानी में कुछ करके सीखने का अवसर प्रदान करना।

*शाक वाटिका की फसलों की सिंचाई के लिए घर के स्नानघर तथा रसोई से गिरने वाला पानी,सिंचाई के द्वारा उपयोग में लाना।

*फसलों को खाद की भी जरूरत होती है। उसके लिए साग सब्जियों का छीलन, अनाज-की भूसी,कण्डे और लकड़ी की राख तथा अन्य कूड़ा कचरा, शाकवाटिका के एक कोने में कम्पोस्ट गड्ढा बनाकर उसमें एकत्र करना और सड़ने के बाद उनका उपयोग खाद के रूप में उपयोग करना।

*वाटिका नाम लेने से ही एक हराभरा लहलहाता सुन्दर दृश्य मन में उतर आता है।शाक वाटिका से भी हमारे घर आगंन की शोभा बढ़ती है। हरियाली तो रहती ही है। कुछ सब्जियाँ जैसे- नेनुआं, लौकी,कुम्हड़ा (कददू ) भिण्डी आदि के फूल जब खिलते हैं तो अत्यन्त मनोहरी दृश्य उपस्थित होता है। घर का दृश्य हरा-भरा मनोरम दिखे,शाकवाटिका का यह भी उद्देश्य होता है।

**शाक वाटिका का निर्माण** - एक आदर्श शाक वाटिका के लिए 25 मीटर लम्बी तथा 10 मीटर चौड़ी भूमि पर्याप्त होती है।यह जरूरी नहीं कि इतनी भूमि हो तभी शाक वाटिका बनाई जा सकती है। इसके लिए जो भी भूमि उपलब्ध हो उसी में एक उपयोगी शाकवाटिका बन सकती है,आभिविन्यास की कुशलता होनी चाहिए । आज कल तो भूमि के अभाव में लोग छतों पर, आँगन में गमले रखकर उनमें सब्जियाँ भी उगाते हैं ।शाक वाटिका का निर्माण निम्नवत् करना चाहिए-

*भूमि की सफ़ाई,गुड़ाई , करके शाकवाटिका 25 X 10 मीटर का आकार देना चाहिए ।

*चारों ओर से मेंड़ बन्दी करके उसके किनारे बाड़ से घेरे-बन्दी करनी चाहिए ।

*बाड़ के लिए कंटीले तार और खम्भों का प्रयोग करते हैं।

*बाड़, करौंदे की भी लगाई जा सकती है किन्तु इसे तैयार होने में अधिक समय लगता है।

*वाटिका में आने-जाने का रास्ता बनाना चाहिए।

*रास्ते के किनारे सिंचाई की नाली रखनी चाहिए ।

*पूरी भूमि को सुविधा जनक आयताकार क्यारियों में विभाजित कर लेना चाहिए ।

*वाटिका के अन्त में, एक कोने पर कम्पोस्ट गड्ढा रखना चाहिए ।

*कददू वर्ग (कोहड़ा, लौकी, नेनुआं, तरोई, करेला, टिण्डा, चिचिण्डा आदि ) की सब्जियाँ,वाटिका के बाड़ के सहारे उगाना चाहिए।

*जाड़ों में बाड़ के तीन ओर मटर उगाई जा सकती है।

*प्रवेश द्वार के पास सेम उगाई जा सकती है।

*जाड़े और कन्द वाली सब्जियाँ-जैसे मूली, शलजम, गाजर, अदरक, लहसुन, आदि क्यारियों की मेड़ों पर उगाई जा सकती है।

*शाकवाटिका में कुछ मन पसन्द फूल के साथ - साथ कम स्थान घेरने वाले कुछ फलवृक्ष जैसे- पपीता, फ़ालसा,नींबू ,अंगूर भी लगाये जा सकते हैं । इसके लिए वाटिका में बहुवर्षीय पौधों का स्थान भी निर्धारित करना चाहिए ।

* पर्याप्त भूमि होने पर कलमी आँवले का भी एक पेंड़ लगाया जा सकता है।

**फसल चक्र** - उचित फसल चक्र अपना कर पूरे वर्ष ताजी सब्जियाँ फूल और फल प्राप्त किये जा सकते हैं । सब्जियों के कुछ फसल चक्र नीचे दिये जा रहे है।

* मूली (जुलाई -अगस्त), मटर (अक्टूबर-मार्च),करेला (मार्च-जून)

*	बैग़न (अगस्त-मार्च), टिण्डा (मार्च-अगस्त)

*	लौकी (जुलाई-नवम्बर), टमाटर (दिसम्बर-मई)

*	मूली (जून-सितम्बर), मटर (अक्टूबर-मार्च), भिण्डी (मार्च-जून)

*	फूलगोभी (जुलाई-नवम्बर), प्याज (नवम्बर-मई)

*	पातगोभी (नवम्बर-मार्च), तोरई,लौकी,( अप्रैल-सितम्बर)

*	अदरक(जून-अक्टूबर),मिर्चा,पालक,मेंथी,सोआ,धनियाँ,सौफ़(अक्टूबर-जनवरी),करेला, भिण्डी, कददू वर्ग की सब्जियाँ (फरवरी,जून)

शाक वाटिका के लिए ध्यान देने योग्य बातें

**शाक वाटिका के लिए ध्यान देने योग्य बातें निम्नालिखित हैं -**

*	किसी भी ऋतु में क्यारियों को खाली नहीं छोड़ना चाहिए ।

*	सब्जियों की बुवाई लाइनों में करनी चाहिए ।

*	टमाटर,बैंगन,गोभी,मटर,शलजम आदि सब्जियों के बीजों की 2,3 लाइनें लगातार 8,10 दिन के अन्तर पर बोना चाहिए ताकि लगातार अधिक समय तक सब्जियाँ प्राप्त होती रहें ।

*	सब्जियों के उन्नतशील बीजों की समय पर बुवाई करना चाहिए ।

*	सब्जियों की निराई-गुड़ाई समय से करनी चाहिए तथा कीट पतंगों से सुरक्षा करना चाहिए ।

**शाक वाटिका की सफलता में बाधक बातें निम्नालिखित हैं-**

*	शाक वाटिका में उचित जल-निकास का न होना ।

*	शाक वाटिका में छाया होने के कारण पौधों का विकास न होना ।

*	शाकोत्पादन की ठीक से जानकारी न होना ।

*	शाक वाटिका की सुरक्षा की पर्याप्त सुविधा न होना ।

*	सब्जियों के उन्नतशील बीज उपलब्ध न होना ।

*	सब्जियों की बुवाई उचित दूरी पर, पंक्तियों में न बोना ।

**शाक वाटिका का महत्व**

शाक वाटिका का महत्व निम्नवत् है। -

*	प्रत्येक समय ताजी सब्जियाँ मिल जाती हैं ।

*	घर के पास व्यर्थ भूमि का उपयोग हो जाता है। ।

*	घर के व्यर्थ पानी का सब्जियों की सिंचाई में उपयोग हो जाता है। ।

*	घर के सदस्यों के खाली समय का सदुपयोग हो जाता है। ।

*	आतिथि के असमय आ जाने पर भी आसानी से सब्जियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।

*	घर का वातावरण स्वच्छ और सौन्दर्यपूर्ण हो जाता है।

अत: शाक भाजी की कमी को पूरा करने के लिए थोड़ी बहुत शाक भाजी अवश्य उगानी चाहिए । अपने घरों में शाक वाटिका तैयार करने से ताजी सब्जियाँ प्राप्त कर परिवार के लोगों का स्वास्थ्य सुधारा जा सकता है।

**वृक्षारोपण**

वृक्षारोपण में फल वृक्षों के अलावा कुछ विशेष स्थानों के लिए विशेष तरह के वृक्षों को लगाया जाता है। इसमें वृक्षों की पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने में अहम भूमिका होती है।वृक्षारोपण करने से हमें कई तरह के लाभ होते हैं।इनसे इमारती- लकड़ी, इंर्धन, यत्रियों के लिए छाया, तथा मृदा कटाव (Soil Erosion)को रोकने,कागज उद्योग के अलावा इनका औषधीय महत्व भी है। हमारें देश में भारत सरकार हर वर्ष वृक्षारोपण को महत्व देने के लिए वन महोत्सव का आयोजन करती है। स्थान विशेष के अनुसार खाली पड़ी भूमियों में वृक्ष लगाना ही वृक्षारोपण है। सड़कों,नहरों,रेल की पटरियों के किनारे सार्वजनिक स्थलों घरों के आस-पास वृक्षारोपण कर बिगड़ते पर्यावरण को सुधारा जा सकता है।आम,कटहल,जामुन,महुआदि फलदार वृक्षों के अतिरिक्त पीपल,पाकड़,बरगद,अशोक,शीशम,अर्जुन,सागौन आदि वृक्षों का रोपण किया जाता है। औषधीय एवं सुगन्धीय पौधों को भी रोपित किया जा सकता है।

**वृक्षारोपण की कुछ आवश्यक बातें-**

1) सड़को के किनारे मजबूत वृक्ष लगाते हैंताकि आँधी -तूफान में पेंड़ टूटकर मार्ग अवरुद्ध न कर सके।

2) यथा सम्भव सड़को के किनारे सदाबहार वृक्ष लगाने चाहिए। पतझड़ वाले वृक्ष अपनी पत्तियाँ गिराकर यातायात प्रभावित करते हैं।

3) सार्वजनिक स्थलों एवं विद्यालयों में छायादार तथा आकर्षक फूल वाले वृक्ष लगाने चाहिए।

4) घरों के आस-पास फलदार वृक्ष लगाए।

5) बंजर भूमि में सूखा तथा बाढ़ सहन करने वाले वृक्ष लगाना चाहिए ।

**अभ्यास के प्रश्न**

1) निम्नालिखित प्रश्नों में सही उत्तर के सामने (√) का निशान लगाइए -

**क) बाग लगाने के लिए सबसे अच्छी भूमि होती है। -**

1) दोमट भूमि 2) चिकनी भूमि

3) बलुई भूमि 4) रेतीली भूमि

**ख) फलवृक्ष लगाने का सर्वोत्तम समय होता है।-**

1) जनवरी 2) जुलाई

3) अप्रैल 4) अक्टूबर

**ग) बाग में सिंचाई की उत्तम विधि है। -**

1) सिंचाई 2) ड्रिप सिंचाई

3) कूँड़ विधि 4) उपर्युक्त कोई नहीं

**2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-**

क) बाग में पतझड़ वाले पौधे ............में लगाना चाहिए ।

ख) बाग लगाने का गड्ढे खोदने का सर्वोत्तम समय ............है।

ग) बाग में पौधे लगाने का सर्वोत्तम समय ............है।

घ) बाग में पौधों की सुरक्षा की दृष्टि से चारों तरफ ............लगाते हैं ।

ड) चश्मा लगाना ...........की विधि है।

**3) निम्नालिखित प्रश्नों में स्तम्भ `क' को स्तम्भ `ख ' से सुमेल कीजिए -**

**स्तम्भ `क'  स्तम्भ `ख'**

| | |
|---|---|
| 1.आम | 3× 3 मी |
| 2.अमरूद | 10 × 10 मी |
| 3.पपीता | 8 ×8 मी |
| 4.केला | 3 ×3 मी |

**4) निम्नालिखित कथन में सही के सामने (√) तथा गलत के सामने (x) का निशान लगाइये -**

क) आम के बाग हमेंशा ईंट के भट्ठों के पास लगाने चाहिए ।

ख) सदा बहार पत्तियों वाले वृक्ष बाग में हमेशा बीच में लगाने चाहिए ।

ग) बाग में गर्म हवाओं तथा लू से बचने के लिए वायु वृक्ति लगाते हैं ।

घ) बाग में पौधे लगाने के लिए मई,जून महीने में गड्ढे खोद लेने चाहिए ।

5) शाकवाटिका के मुख्य दो उद्देश्य लिखिए ।

6) एक आदर्श शाक वाटिका के लिए कम से कम कितनी लम्बी चौड़ी भूमि होनी चाहिए ?

7) बाग में वायु वृक्ति किन किन दिशाओं में लगाना उचित होता है ?

8) पौधे लगाने का सबसे उचित समय कौन सा है। समझाइये ?

9) बाग में पौधा लगाते समय किन - किन बिन्दुओं पर ध्यान देना जरुरी है?

10) उद्यान के कितने प्रकार होते हैं ?

11) शाक वाटिका के लिए कोई चार फसल चक्र लिखिए ?

12) कददू वर्ग में कौन - कौन सी सब्जियाँ आती है?

13) बाग लगाने से पूर्व किन-किन प्रारम्भिक तैयारियों की आवश्यकता होती है? इन तैयारियों के नकारने पर बाग लगाने में क्या असुविधा होगी ?

14) बाग में पौधे किन-किन विधियों से लगाये जाते है ? उनमें से किसी एक विधि का सचित्र वर्णन कीजिए।

15) वृक्षारोपण करने से क्या लाभ हैं ? सविस्तार वर्णन कीजिए ।

17) बाग लगाते समय किन - किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ? विस्तृत वर्णन कीजिए ।

18) शाकवाटिका का निर्माण कैसे किया जाता है। ?वर्णन कीजिए ।

back

# इकाई 6 -कृषि यन्त्र

- **जुताई के यन्त्र, हलों के प्रकार**
- **मेस्टन एवं शाबाश हलों का ज्ञान**
- **अन्य कृषि यंत्र-कल्टीवेटर के कार्य एवं प्रकार, हैरो के कार्य एवं प्रकार, गार्डेन रैक डिबलर, करहा, मड़ाई के यन्त्र - थ्रेसर के साथ, सीडड्रिल, पैडी थ्रेशर, मेज कार्नशेकर, हारवेस्टर, रोटावेटर, सीड कम फर्टीड्रिल, पोटैटो प्लान्टर आदि।**

फसल उत्पादन में वृद्धि के लिए कृषि कार्यो को सही समय पर सही तरीके से करना आवश्यक होता है।हमारे देश के कृषि विकास में कृषि यन्त्रों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्नत कृषि यन्त्रों द्वारा विभिन्न कृषि कार्यो जैसे भू-परिष्करण,भूमि समतलन, बुवाई, निराई,गुड़ाई, कटाई और मड़ाई को सही समय पर करने में काफी सहायता मिलती है।

बुवाई के पहले खेत की मिट्टी को काटकर बुवाई के योग्य बनाया जाता है। इसे भू-परिष्करण या खेत की जुताई कहते हैं। भूमि की जुताई से भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है तथा भूमि की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।जुताई से खरपतवार नष्ट होते हैं तथा भूमि के वायु संचार में भी वृद्धि होती है।

**भू-परिष्करण यन्त्र दो प्रकार के होते हैं**

**1)प्राथमिक भू-परिष्करण यन्त्र**-खेत में बुवाई के पहले की कृषि क्रियाओं को प्राथमिक भू-परिष्करण कहते हैं। प्राथमिक भू-परिष्करण में प्रयुक्त होने वाले यंत्र को प्राथमिक भू-परिष्करण यन्त्र कहते हैं

2)**द्वितीयक भू-परिष्करण यन्त्र**- बुवाई के बाद खड़ी फसल में की जाने वाली कृषि क्रियाएं जैसे- निराई-गुड़ाई,मिट्टी चढ़ाना ,कूँड़ बनाना आदि को द्वितीयक भू-परिष्करण कहते हैं तथा इन कार्यो को सम्पन्न करने में प्रयुक्त यंत्रों को द्वितीयक भू-परिष्करण यंत्र कहते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के भू-परिष्करणों में प्रयोग आने वाले यन्त्र भी अलग-अलग होते हैं। जुताई के यन्त्रों को निम्नालिखित दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। -

अ) पशुआें द्वारा चलित यन्त्र ।

ब) ट्रैक्टर द्वारा चलित यन्त्र ।

भूमि की जुताई में प्रयुक्त होने वाले पशु द्वारा चलित प्रमुख यन्त्र निम्नालिखित है। -

1) सुधरा हुआ देशी हल

2) मिट्टी पलटने वाले हल

3) तवेदार हल

4) कल्टीवेटर

5) हैरो

1)**सुधरा हुआ देशी हल** - यह हल प्राय: लकड़ी का बना हुआ होता है इसमें जमीन को काटने के लिए लोहे का फॉल लगा होता है। हल को बैलों द्वारा खींचने के लिए हरीस लगी होती है। किसानों के लिए यह एक उपयोगी यन्त्र है। इससे जुताई के अलावा बुवाई और निराई का भी काम किया जाता है।

2) **मिट्टी पलटने वाले हल** - इस प्रकार के हल मिट्टी को काटने के साथ-साथ पलटने का भी काम करते हैं। ये हल भूमि के प्रकार,नमी तथा पशु शक्तिके अनुसार कई प्रकार के होते हैं जैसे मेस्टन हल, वाह-वाह हल, शाबाश हल आदि।

1)**मेस्टन हल-** मेस्टन हल हल्का और छोटा होता है।इसको साधारण बैल सुगमता से खींच सकते हैं। इसके चलाने में बैलों पर लगभग उतना ही बल पड़ता है जितना कि देशी हल के खीचने में यह देशी हल की अपेक्षा अधिक काम करता है, साथ ही यह मिट्टी की गहरी जुताई करता है और उसे पलटने का भी कार्य करता है।

**रचना**- मेस्टन हल में देशी हल की भाँति ही हरीस और हत्था लगा होता है ,लेकिन इसमें मिट्टी पलटने वाला भाग बड़ा होता है। जिसे मोल्ड बोर्ड कहते हैं। इसका फाल (Share)भिन्न प्रकार का होता है। जो चौड़ी कूँड़ बनाता है। भूमि में चलाने पर फाल जो मिट्टी काटता है। वह मोल्ड बोर्ड पर आ जाती है।इस मिट्टी को मोल्ड बोर्ड अपनी विशेष बनावट के कारण पलट देता है।इस प्रकार ऊपर की मिट्टी नीचे तथा नीचे की मिट्टी ऊपर आ जाती है। हमारे प्रदेश की दोमट मिट्टी में यह ज्यादा उपयोगी सिद्ध हुआ है।इसके कूँड़ की चौड़ाई तथा गहराई लगभग 12.5 सेमी होती है। हल का कुल भार लगभग 15 किग्रा होता है। और इसका खिंचाव 80 से 90 किग्रा होता है। देशी हल के समान ही इस हल को गहरा तथा उथला किया जा सकता है।इस हल का हत्था तथा हरीस लकड़ी का तथा शेष भाग लोहे का बना होता है।

2)**शाबाश हल**- यह मेस्टन हल की भाँति लोहे का बना होता है। इसका फाल पक्के इस्पात का बनाहोता है। यह हल दोमट मिट्टी में अच्छा काम करता है ।इसके जुताई को भी गहरा और उथला किया जा सकता है। घिस जाने पर फाल को भट्टी में गर्म करके पीटकर तेज किया जाता है।

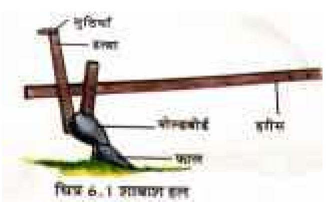

**चित्र 6.1 शाबाश हल**

**रचना** - इसमें देशी हल की तरह लकड़ी की एक लम्बी हरीस बनी होती है। मुठिया तथा हत्था भी लकड़ी या लोहे की बनी होती है। इसमें एक स्टैण्ड लगा होता है। जिसमें छिद्र होते हैं। कूँड़ की गहराई घटाने  बढ़ाने के लिए हरीस का बोल्ट खोलकर स्टैण्ड के ऊपर

अथवा नीचे वाले सूराख (छिद्र) में लगा दिया जाता है।इस हल के हरीस और फाल के बीच जगह अधिक होती है। जिससे खरपतवार और घास वाले खेत में जुताई करने पर घास कम फँसती है। इसका भार 16 किग्रा तथा खिचांव लगभग 90 से 100 किग्रा होता है।

3)**तवेदार हल** - इस प्रकार के हल का प्रयोग चट्टानी तथा अधिक घास पात वाली जमीन में किया जाता है। यह हल कड़ी एवं चिकनी जमीन की जुताई करने के काम आता है ।इस हल द्वारा जुताई करने के बाद खरपतवार जमीन के ऊपर आ जाते हैं जो जमीन में नमी बनाए रखने में सहायक होते हैं। इन हलों में फाल के स्थान पर लोहे का दो या तीन तवा लगा होता है। जिनका व्यास लगभग 45 सेमी होता है।

**चित्र 6.2 तवेदार हल**

4)**कल्टीवेटर**- भूमि की तैयारी के अन्तिम चरण में कल्टीवेटर का प्रयोग मुख्यत: मिट्टी को भुरभुरी बनाने के लिए किया जाता है। परन्तु कुछ किसान इसे मिट्टी पलटने वाले या तवेदार हलों के स्थान पर भी करते हैं। यह यन्त्र जमीन की पपड़ी तोड़ने,ढेले तोड़ने के साथ-साथ सूखी घास को जमीन के ऊपर लाने में सहायक होता है। कल्टीवेटर को एक जोड़ी बैलों द्वारा खींचा जा सकता है।

5)**हैरो** - हल द्वारा जुताई के बाद जमीन की उथली जुताई हैरो से की जाती है।हैरो चलाने का मुख्य उद्देश्य जमीन को भुरभुरा करना तथा भूमि की नमी को सुरक्षित रखना है।इसका प्रयोग बुवाई से तुरन्त पहले किया जाता है। जिससे बीज बोते समय खेत में खरपतवार न रहें। बैलों द्वारा चलित हैरो निम्नालिखित प्रकार के होते हैं - अ) कमानीदार हैरो ब) तवेदार हैरो स) ब्लेड हैरो या बक्खर

## चित्र 6.3 कमानीदार हैरो

## भू-परिष्करण में काम आने वाले ट्रैक्टरचलित यन्त्र

1)**मोल्डबोर्ड हल (मिट्टी पलट हल)**- यह एक प्राथमिक भू-परिष्करण यन्त्र है। इसे मिट्टी पलट हल भी कहते हैं यह उन परिस्थितियों में बहुत उपयोगी होता है,जहाँ भूमि की मिट्टी को पूरी तरह पलटना आवश्यक है।फालों की संख्या ट्रैक्टर के शक्ति के ऊपर निर्भर करती है। ये ज्यादातर 2 या 3 फाल वाले होते हैं। इसका का मुख्य भाग हल का बाटम होता है,जो कूँड़ खोदने, मिट्टी को भुरभुरी बनाने, मिट्टी को पलटने तथा खरपतवार को दबाने का काम करता है। कुछ मोल्डबोर्ड हलों में दो बाटम लगे होते हैं परन्तु मिट्टी पलटने का प्रावधान एक बार में एक तरफ ही होता है।इसे रिवर्सिबुल मोल्डबोर्ड हल भी कहते हैं ।

2 **डिस्क हल या तवेदार हल**- यह भी एक प्राथमिक भू-परिष्करण यन्त्र हैं। यह सख्त,पथरीली,सूखी और चिपकने वाली भूमि की जुताई के लिए बहुत उपयोगी है। इसमें 24 से 28 इंच व्यास वाले तवे लगे होते हैं । यह मिट्टी को काटने व पलटने दोनों का काम करता है।

**हैरो** - यह एक ट्रैक्टर चलित द्वितीय भू-परिष्करण यन्त्र है। यह जुताई के बाद ढेलों को फोड़ने ,खरपतवार को काटकर मिट्टी में मिलाने और बीज शैय्या को भुरभुरा करने के काम आता है।ये तीन प्रकार के होते हैं -

अ) सिंगल एक्शन डिस्क हैरो ।

ब) डबल एक्शन डिस्क हैरो ।

स) आफ॔सेट डिस्क हैरो ।

सिंगल एक्शन हैरो को अधिक बार चलाने से जमीन ऊँची-नीची हो जाती है।अत: इसका प्रयोग बहुत कम होता है। सबसे अधिक प्रयोग होने वाला हैरो डबल एक्शन डिस्क हैरो है। इस हैरो से खेत ऊचाँ-नीचा नहीं होता है।आफ सेट डिस्क हैरो का उपयोग फलदार वृक्षों के आस पास जुताई करने में होता है।

**कल्टीवेटर**- यह भी एक द्वितीयक भू-परिष्करण यन्त्र है।यह यंत्र जुताई और निराई-गुड़ाई के काम आता है।इसे चलाने के बाद घास फूस और जीवाणु भूमि से बाहर आ जाते हैं जो सूर्य की गर्मी से नष्ट हो जाते हैं । सबसे ज्यादा प्रयोग में आने वाला कल्टीवेटर कानपुर एवं वाह वाह कल्टीवेटर है।काँटेदार कल्टीवेटर का उपयोग करीब 2 इंच गहराई तक की जुताई के लिए होता है।स्प्रिंग टूथ कल्टीवेटर करीब 4-5 इंच तक की जुताई के लिए उपयोगी होता है।

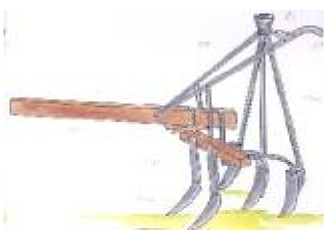

**चित्र 6.4 वाह-वाह कल्टीवेटर**

**अन्य कृषि यन्त्र-**

1) गार्डेन रैक - इनका उपयोग किचेन गार्डन और नर्सरी के लिए जमीन तैयार करने मेंहोता है। ।इनमें 10-16 दाँते होते हैं।ये पत्तियों इत्यदि को इकट्ठा करने के उपयोग में भी आते हैं।

**चित्र 6.5 गार्डन रैक**

2) **लेवलिंग करहा (Levelling Karha)**-यह यंत्र खेत को समतल करने के काम आता है। इसे लोहे के चादर को मोड़कर बनाया जाता है और चादर के पीछे मजबूती के लिए लकड़ी का ढांचा लगा रहता है ।ऊपर की ओर लकड़ी का हत्था लगा होता है। तथा सामने की ओर इसमें दो कड़े लगे होते हैं जिसमें जंजीर डालकर उसे बैलों से जोड़ा जाता है।इसके द्वारा खेत की ऊँची जगह की मिट्टी को खींचकर नीची जगह पर गिरा देते हैं और इस प्रकार धीरे - धीरे खेत समतल हो जाता है ।इसको चलाने के लिए एक आदमी और एक जोड़ी बैल की आवश्यकता होती है।

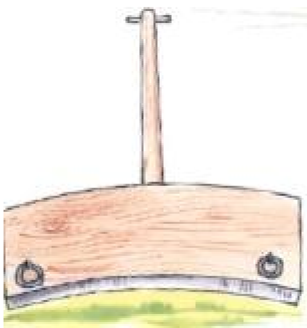

**चित्र 6.6 करहा**

3) **डिबलर**- यह एक बुवाई यन्त्र है। यह खेत में छिद्र बनाता है और छिद्रों में बीजों को डाला जाता है। इस यंत्र का प्रयोग सब्जियों या ऐसी फसलों के लिए किया जाता है जहाँ पौधे से पौधों को उचित दूरी पर रखना है।डिबलर का प्रयोग प्राय: उस भूमि में किया जाता है जहाँ भूमि भारी वर्षा एवं बाढ़ के बाद जुताई योग्य नहीं रह जाती है।

4) **सीडड्रिल**- यह एक ट्रैक्टर चलित बुवाई का यंत्र है इसमें 7 से 13 फाल लगे होते हैं। इसमें बीज का एक बाॅक्स लगा होता है। इसको जैसे-जैसे खेत में चलाया जाता है बाॅक्स से बीज एक निश्चित दूरी पर खेत में गिरते रहते हैं। आज कल इनके साथ एक और बाॅक्स लगा होता है जो बीज के साथ-साथ खाद गिराने के काम आता है। इसको ट्रैक्टर चलित बीज एवं उर्वरक ड्रिल कहते हैं ।

**कटाई के यन्त्र** - फसलों की कटाई के लिए मुख्य रूप से हँसिया का प्रयोग किया जाता है। हँसिया दो प्रकार के होते हैं ।

1) साधारण हँसिया 2) दाँतेदार हँसिया

**चित्र 6.7 (अ) साधारण हँसिया**

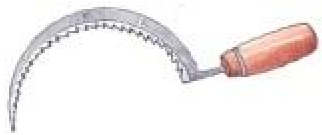

**चित्र 6.7 (ब) दाँतेदार हँसिया**

साधारण हँसिया लोहे की ब्लेड को घुमाकर अर्ध चन्द्राकार बनाया जाता है जिस पर एक लकड़ी का हत्था लगा रहता है। यह बिना दाँत का होता है। ब्लेड के भीतर की ओर तेज धार होती है जो कटाई का कार्य करती है।इसका उपयोग भारी भूमि में उगी फसलों को काटने में किया जाता है। दाँतेदार हँसिया भी लोहे की ब्लेड से ही बनाया जाता हैजो साधारण हँसिये की तुलना में कम घुमावदार होता है। ब्लेड के भीतरी हिस्से पर घने दाँते बने रहते हैं जो फसल को शीघ्र काटने में सहायक होते हैं । इसको पकड़ने के लिए एक लकड़ी का हत्था लगा रहता है।

**मड़ाई के यन्त्र**

कटाई के बाद फसल की मड़ाई (Threshing) आवश्यक है। इसमें फसलों के दानों को निकाला जाता है । जो यन्त्र इस काम में प्रयोग होते हैं उन्हें मड़ाई के यन्त्र कहते हैं । इन यन्त्रों द्वारा मड़ाई के साथ-साथ ओसाई का भी काम हो जाता है। मड़ाई के यन्त्रों को दो भागों में बाटाँ जा सकता है। -

**चित्र 6.8 आलपैड थे्रशर**

1)**बैल चलित आलपैड थ्रेसर** - यह यंत्र बैलों द्वारा खींचा जाता है।

2)**शक्ति चलित मड़ाई यन्त्र** - यह यंत्र विद्युत मोटर,ट्रैक्टर या डीजल इंजन से चलता है। इस यंत्र द्वारा मड़ाई,ओसाई औरसफ़ाईका काम एक साथ किया जाता है इससे एक घंटे में 2 से 10 क्विंटल अनाज की मड़ाई कर सकते हैं। इसका प्रचलित नाम थे्रशर है।

भुट्टा से दाना निकालने का यन्त्र ( मेज कार्न शेलर )- यह यन्त्र मक्के के भुट्टे से दाना निकालने के काम आता है। यह यन्त्र नालिकाकार होता है जो एक गोल पाइप का बना होता है ।भुट्टे से दाना निकालते समय इस यन्त्र को बाएँ हाथ में पकड़ते हैं तथा मक्के का भुट्टा दाहिने हाथ में रखते हैं।

3)**हारवेस्टर (Harvester)**- यह यन्त्र खड़ी फसल को काटने, मड़ाई करने और साथ ही सफ़ाई करने के काम आता है ।इससे मुख्यत: गेहूँ की कटाई और मड़ाई का काम लिया जाता है।यह दो प्रकार का होता है। -

1) ट्रैक्टर चलित

2) स्वचलित या सेल्फ़ प्रोपेल्ड

ट्रैक्टर चलित तथा स्वचलित हारवेस्टर में इंजन लगा होता है जो हारवेस्टर को पर्याप्त शक्ति प्रदान करता है। । इसका प्रयोग प्राय: बड़े आकार के खेतों एवं फार्मो पर किया जाता है।

**पैडी थे्रशर** - यह धान की मड़ाई का यन्त्र है। । यद्यपि यह बाजार में कई मॉडलों में उपलब्ध है। परन्तु खेतों में इसका प्रयोग बहुत कम हो रहा है।

रोटावेटर

यह यंत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक भू-परिष्करण में प्रयोग होता है। रोटावेटर 6 इंच गहराई तक की मृदा को भुरभुरी करने में सहायक होता है। खरपतवार को नष्ट करने का कार्य आसानी से रोटावेटर द्वारा किया जा सकता है।

**सीड कम फर्टीड्रिल**

सीड कम फर्टीड्रिल बीजों की बुवाई तथा खाद एवं उर्वरक एक साथ प्रयोग करने के काम आता है। बुवाई के साथ ही खाद एवं उर्वरक का प्रयोग होने के कारण समय एवं लागत की बचत होती है। इसका प्रयोग दाने वाली फसलों की बुवाई हेतु उपयुक्त रहता है।

**पोटैटो प्लान्टर**

इस यंत्र का प्रयोग आलू को बुवाई के लिए किया जाता है। बुवाई के साथ यह मेंड़ बाँधने एवं खाद डालने का भी कार्य करता है।

**अभ्यास के प्रश्न**

**1) सही विकल्प के सामने सही (√) का चिन्ह लगाइये -**

i) **प्राथमिक भू-परिष्करण का यन्त्र है।**

क) हल ख)खुरपी

ग) थे्रशर घ)उपरोक्त में सभी

ii) **भूमि की जुताई से होती है।पोटैटो प्लान्टर**

क) भौतिक दशा में सुधार ख) रासायनिक दशा में सुधार

ग) पानी भरता है। । घ) उपरोक्त में कोई नहीं

iii) **भूपरिष्करण प्रकार का होता है।**

क) एक प्रकार ख) दो प्रकार

ग) तीन प्रकार घ) चार प्रकार

iv) **मेस्टन हल बना होता है।**

क) लकड़ी का ख)लोहे का

ग) प्लस्टिक का घ) उपरोक्त सभी

**2) निम्नालिखित में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-**

क) मेस्टन हल.............भू-परिष्करण का यन्त्र है।

ख) खेतों से खरपतवार निकालना.............भू-परिष्करण है।

ग) भुट्टे से दाना निकालने की मशीन का नाम.............है।

घ) अधिकतर कल्टीवेटर में.............फाल होते हैं ।

**3) सही कथन पर सही (√) तथा गलत पर (x) का निशान लगाइये-**

क) कल्टीवेटर का प्रयोग भूमि की तैयारी के यन्त्र के रूप में किया जाता है।( )

ख) हैरो चलाने का मुख्य उद्देश्य खेत को भुरभुरा करना है।( )

ग) कल्टीवेटर में 3 से 5 फाल होते हैं ।( )

घ) तवेदार हल मिट्टी को काटने एवं पलटने हेतु प्रयोग किया जाता है।( )

4) मोल्ड बोर्ड हल का क्या कार्य है ?

5) हैरो का मुख्य कार्य क्या है ?

6) हारवेस्टर क्या है?

7) खुरपी के क्या कार्य हैं ?

8) हँसिया कितने प्रकार का होता है ?

9) हल कितने प्रकार के होते हैं ?

10) मिट्टी पलट हल कितने प्रकार के होते हैं ?

11) पैडी थ्रेशर का चित्र बनाइये ?

12) हैरो कितने प्रकार के होते हैं ? वर्णन कीजिए ।

13) भूमि की जुताई हेतु प्रयुक्त होने वाले बैल चलित यन्त्रों का नाम बताइये ।

14) मेस्टन हल का सचित्र वर्णन कीजिए ।

15) शाबाश हल मेस्टन हल से किस प्रकार भिन्न है ?

16) कटाई के प्रमुख यन्त्र कौन-कौन है? इनका फसल की कटाई में महत्व लिखिए ।

17) डिबलर एवं हैरो में क्या अन्तर है। इसका कृषि में महत्व बताइये ।

18) शक्ति चलित मड़ाई यन्त्र थ्रे्शर का सचित्र वर्णन कीजिए ।

19) स्तम्भ `क' को स्तम्भ `ख' से सुमेल कीजिए ।

| **स्तम्भ `क'** | **स्तम्भ `ख'** |
| --- | --- |
| 1.देशी हल | मिट्टी पलटने के लिए |
| 2.मेस्टन हल | उथली जुताई हेतु |
| 3.तवेदार हल | बुवाई हेतु |
| 4.सीडड्रिल | जुताई के लिए |

5.हारवेस्टर भुट्टे से दाना निकालने हेतु

6.कार्न शेलर मड़ाई एवं कटाई हेतु

**20) निम्नलिखित वर्ग पहेली में सही शब्दों को भरिए ।**

**ऊपर से नीचे**

1.बुवाई का यन्त्र

2.फसल काटने का साधारण उपकरण

3.निराई,गुड़ाई तथा मिट्टी भुरभुरी करने वाला यन्त्र

4..जुताई करने का यन्त्र

5.पथरीली तथा घासो में जुताई का यन्त्र

6.मिट्टी पलट हल का नाम

**बाँये से दाँये**

7.बैठकर निराई करने का उपकरण

8 हलके जुताई के बाद उथली जुताई करने का यन्त्र

9.मड़ाई का यन्त्र

10.खड़ी फसल काटने का यन्त्र

[back]

# इकाई - 7 सिंचाई की विधियाँ तथा जल निकास

HHV1CL

**सिंचाई की विधियाँ**

- **प्रवाह या जल प्लवन विधि**
- **क्यारी विधि**
- **कूँड़ विधि**
- **थाला विधि**
- **छिड़काव विधि**
- **ड्रिप (टपक) विधि**

**जल निकास**

- **जल जमाव से हानियाँ**
- **जल निकास से लाभ**
- **जल निकास का प्रबन्ध**

क) खुली हुई पृष्ठीय नालियाँ

ख) भूमिगत बन्द नालियाँ

**सिंचाई की विधियाँ**

फसलों एवं बागों में सफल उत्पादन के लिए सिंचाई की सुविधा अत्यन्त आवश्यक होती हैं। सिंचाई के विभिन्न साधनों जैसे- कुआँ , तालाब, नहर, तथा नलकूप आदि से सिंचाई का पानी खेत तक लाने में पूँजी तथा श्रम दोनों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए सिंचाई के

जल का उपयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्राप्त जल से अधिक से अधिक लाभ हो सके ।अत: सिंचाई जल के समुचित प्रयोग के लिए सिंचाई विधियों की जानकारी आवश्यक होती है।हमारे देश में फसलों की सिंचाई निम्नालिखित विधियों से की जाती है।

1) जल-प्लवन या प्रवाह विधि

2) क्यारी विधि

3) कूँड़ विधि

4) थाला विधि

5) छिड़काव विधि

6) ड्रिप (टपक) विधि

**1)जल प्लवन या प्रवाह विधि**- यह विधि खेत में पलेवा करने या धान में सिंचाई करने हेतु प्रयोग में लायी जाती है। यदि खेत बड़ा है, तो उसे कई भागों में सुविधा के लिए बांट लेते है।

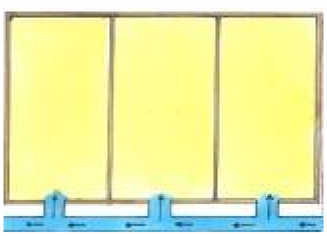

**चित्र 7.1 प्रवाह विधि**

**जल प्लवन या प्रवाह विधि के गुण**

1) सिंचाई करने में आसानी रहती है।

2)सिंचाई करने में समय की बचत होती है।

3)अधिक पानी चाहने वाली फसलों के लिए इस विधि से पर्याप्त जल प्राप्त हो जाता है। जैसे- गन्ना,धान,केला इत्यादि।

4)खेत को पलेवा करने के लिए उपयुक्त विधि है।

**जल-प्लवन या प्रवाह विधि के दोष**

1)सिंचाई की अत्यन्त त्रुटिपूर्ण विधि है। इसमें पौधे जल का लगभग 10 प्रतिशत भाग ही प्रयोग कर पाते हैं। शेष जल वाष्प बनकर, रिसकर अथवा बहकर नष्ट हो जाता है।

2)खेत में जल का वितरण असमान होता है।

3)पानी अधिक लगता है।

4)ढालू खेतों व अधिक नमी न सहन करने वाली फसलों के लिए अनुपयुक्त विधि है।

5)इस विधि द्वारा केवल समतल खेतों की ही सिंचाई की जा सकती है।

**2)क्यारी या बरहा विधि** - सिंचाई की इस विधि में खेत को समतल करके, एक ओर थोड़ी सी ढलान दे दी जाती है।इस विधि में खेत में छोटी-छोटी क्यारियाँ तथा बरहे बना लेते हैं। बरहे इस प्रकार बनाये जाते हैं कि पानी को अधिक चक्कर न काटना पड़े और उसके दोनों ओर की क्यारियों की सिंचाई हो सके।

क्यारियों का आकार भूमि की किस्म, ढाल, फसल एवं सिंचाई के साधन पर निर्भर करता है। चिकनी मिट्टी में कम पानी की आवश्यकता होती है। और बलुई मिट्टी में अधिक। अत: चिकनी मिट्टी में बड़ी, दोमट में उससे छोटी और बलुई मिट्टी में सबसे छोटी-छोटी क्यारियाँ बनायी जाती हैं ।समतल भूमि में बड़ी तथा ढालू भूमि में ढाल के अनुसार छोटी -छोटी क्यारियाँ बनाना ठीक होता है।

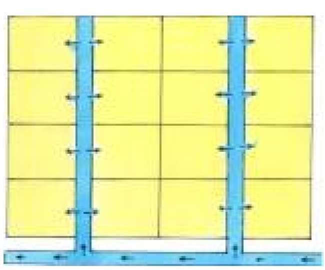

**चित्र 7.2 क्यारी तथा बरहा विधि**

नहर द्वारा सिंचाई में पानी की मात्रा तथा बहाव अधिक होता है। अत: क्यारियाँ बड़ी बनायी जाती हैं।क्यारियों में पानी देते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सबसे पहले खेत

की अन्तिम क्यारी जो मुख्य नाली से दूर है,में पानी दिया जाय। मुख्य नाली के पास वाली क्यारी में पानी सबसे अन्त में दिया जाता है।

**क्यारी विधि के गुण**

1) खेत में समान रूप से पानी भर जाता है,जिससे हर भाग में समान नमी बनी रहती है।

2) छिड़काव तथा पंक्तियों,दोनो प्रकार से बोयी गयी फसलों में इस विधि से सिंचाई सफलतापूर्वक की जा सकती है। जैसे गेहूँ,सरसों,जौ तथा मटर इत्यादि ।

3) अधिक तथा कम पानी चाहने वाली फसलों की सिंचाई की जा सकती है।

4) सिंचाई के जल का समुचित उपयोग होता है ,अत: कम पानी से अधिक क्षेत्रफल सींचा जा सकता है।

5) खेत समतल न होने पर भी पूरे खेत को समान रूप से जल मिल जाता है।

**क्यारी विधि के दोष**

1) क्यारियाँ तथा बरहे बनाने में अधिक समय, श्रम तथा धन लगता है।

2) फसल का वास्तविक क्षेत्रफल कम हो जाता है।

3) बरहे तथा मेंड़ों के कारण उन्नत यंत्रों से फसल की निराई-गुड़ाई करने में कठिनाई होती है।

**3) कूँड़ विधि**- यह सिंचाई की अत्यधिक प्रचलित विधि है। फसलों की दो पंक्तियों के बीच में पतली नाली बना ली जाती है। जिन्हें कूँड़ कहते हैं । कूँड़ को खेत की मुख्य नाली में मिलाते हैं। कूँड़ सदैव खेत की ढाल की दिशा में बनाये जाते हैं जिससे पानी खेत के अन्त तक आसानी से पहुँच जाय। गन्ना, आलू ,चुकन्दर, शकरकन्द आदि मेंड़ों पर बोयी जाने वाली फसलों में इस विधि से सिंचाई की जाती है।

**कूँड़ विधि के गुण**

1) कूँड़ में जल आधे से एक चौथाई तक ही भू-सतह को भिगोता है। इस तरह जल के वाष्पीकरण से कम हानि होती है।

2) इस विधि में भू-पट्टी नहीं बनती है।

3) रिसाव द्वारा जल मेंड़ पर लगे पौधों की जाड़ो तक पहुँच जाता है तथा जल की बचत होती है।

4) निराई-गुड़ाई सम्भव है और सिंचाई हेतु श्रम की कम आवश्यकता होती है।

**कूँड़ विधि के दोष**

1)इस विधि से केवल उन्हें फसलों की सिंचाई की जा सकती है जो मेड़ों पर बोयी गयी हैं ।

2)प्रत्येक नाली में एक समान जल देना कठिन है।

3)कूँड़ बनाने में अधिक समय लगता है।

**4) थाला विधि**

**चित्र 7.3 थाला विधि सिंचाई**

इसमें प्राय: छोटे-छोटे वृत्ताकार समतल थाले वृक्षों के चारों तरफ बनाये जाते हैं कभी-कभी इस थाले का आकार वर्गाकार भी होता है,जल इन थालों में दिया जाता है ,आमतौर पर यह विधि वृक्षों की सिंचाई के लिए अपनायी जाती है। जायद की फसलों में जैसे- खरबूजा, तरबूज,ककड़ी, तोरई आदि की सिंचाई के लिए भी इस विधि का प्रयोग किया जाता है। पक्तिंयों में लगे हुए पौधे के मुख्य तने से 30-40 सेमी की दूरी पर थाले बनाये जाते है।थालों

की पक्तिंयों के बीच में एक बरहा बना दिया जाता है। जो सिंचाई की मुख्य नाली से मिला रहता है।इस विधि से पूरे क्षेत्र की सिंचाई नहीं की जाती है जिससे पानी की बचत होती है।

**थाला विधि के गुण**

1) इस विधि से सिंचाई करने पर जल की बचत होती है क्योंकि पानी पूरे क्षेत्र में देने के बजाय प्रत्येक पौधे की जाड़ो के पास बने थालों में दिया जाता है।

2) पौधे की जड़-तना सीधे जल के सम्पर्क में नहीं आते हैं जिससे पौधे को कोई हानि नहीं होने पाती है।

3) पानी सीधे जड़ो के क्षेत्र में उपलब्ध होता है अत: पौधे उनका समुचित उपयोग कर लेते हैं ।

**थाला विधि के दोष**

1) थाले बनाने में समय, श्रम तथा धन अधिक लगता है।

2) यह विधि खाद्यान फसलों के लिए उपयोगी नहीं है।

**5) छिड़काव विधि** - पौध घर अथवा फुलवरियों में हजारे के द्वारा पौधों पर पानी छिड़क कर सिंचाई करते हैं। जिन क्षेत्रों में पानी की कमी होती है तथा भूमि समतल नहीं होती है, वहां पर इस विधि का प्रयोग लाभदायक रहता है। इसमें पानी को पाइपों के द्वारा खेत तक ले जाया जाता है और स्वचलित यन्त्रों द्वारा फसलों पर छिड़काव करके सिंचाई की जाती है। इस विधि का प्रयोग प्राय: उन्नतशील कृषकों द्वारा ही किया जाता है।

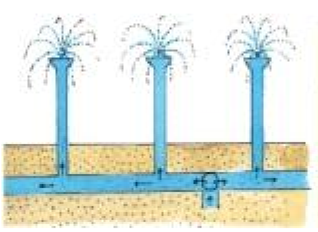

**चित्र 7.4 छिड़काव विधि**

**छिड़काव विधि के गुण-**

1) सिंचाई के जल की बचत होती है।

2) सारे क्षेत्र में पानी का समान वितरण होता है।

3) ऊँची-नीची तथा सभी प्रकार की भूमियों की सिंचाई की जा सकती है।

4) पानी के साथ पोषक तत्व फसलों को दिये जा सकते हैं।

5) अपवाह तथा भू-क्षरण का कोई खतरा नहीं होता है।

**छिड़काव विधि के दोष-**

1) श्रम तथा धन की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है।

2) कुशल श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

3) जब सिंचाई के समय में हवा तेजी से चलने लगती है तो जल का वितरण समान नहीं हो पाता है।

4) गर्म तथा शुष्क वायु वाले क्षेत्र के लिए यह विधि उपयुक्त नहीं है।

5) अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है क्योंकि यह 0.5-1. 0 किलोग्राम / वर्ग सेमी के दबाव पर कार्य करती है।

6) **ड्रिप (टपक) सिंचाई विधि** - इस विधि में सिंचाई के जल को पौधों के जाड़े क्षेत्र में बूँद-बूँद करके दिया जाता है। सिंचाई की यह विधि इजराइल देश में विकसित की गयी थी। अब यह अन्य देशों में भी प्रचलित हो रही है। इस विधि में वाष्पीकरण की क्रिया द्वारा जल हानि नहीं के बराबर होती है। सिंचाई की यह विधि ऊसर,बलुई भूमि तथा बाग के लिए उपयोगी है। इस विधि में पी. वी.सी. की पाइप लाइन खेत में बिछायी जाती है तथा आवश्यकतानुसार जगह-जगह नोजिल लगाये जाते हैं। इन पाइपों में 2.50 किग्रा / वर्ग सेमी के दबाव पर जल को छोड़ा जाता है जो कि नोजिल से निकलकर भूमि को धीमे-धीमे नम करता है।

**ड्रिप विधि के गुण-**

1) यह विधि उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जहाँ वर्षा बहुत कम होती है।

2) कम पानी से ज्यादा क्षेत्र फल की सिंचाई की जा सकती है।

3) पानी की हानि न्यूनतम होती है।

4) भूमि का समतलीकरण आवश्यक नहीं है।

**ड्रिप विधि के दोष-**

1) प्रारम्भिक लागत अधिक होती है।

2) तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है।

3) स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है।

**जल निकास**

कृषि में जल निकास का उतना ही महत्व है जितना सिंचाई का। इसलिए सिंचाई एवं जल निकास का अध्ययन साथ -साथ किया जाता है।

साधारण रूप से किसी भी स्थान से अतिरिक्त पानी निकालकर बहा देने को जल निकास कहते हैं किन्तु कृषि विज्ञान में इसका विशेष अर्थ है। फसलोत्पादन हेतु खेत से अतिरिक्त जल को निकाल देते हैं जिससे मृदा की उचित दशा बनी रहे।

**इस प्रकार जल निकास की निम्नालिखित विशेषताएँ हैं-**

1) खेत में आवश्यकता से अधिक पानी भरने से रोकना ।

2) खेत में भरे हुए अतिरिक्त पानी को बाहर निकालना।

पौधों के लिए जल आवश्यक है। विभिन्न प्रकार के पौधों की पानी की आवश्यकता अलग-अलग होती है। परन्तु बिना पानी के कोई पौधा जीवित नहीं रह सकता है।पानी के अभाव में न तो भूमि की उचित तैयारी की जा सकती है और न ही मिट्टी में इतनी नमी लायी जा सकती है कि बीजों का अंकुरण तथा पौधों का समुचित विकास हो सके किन्तु जिस प्रकार जल के अभाव का कृषि पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उसी प्रकार पानी की अधिकता का भी प्रत्येक प्रकार की कृषि योग्य भूमि तथा पौधों की जल सम्बन्धी अपनी एक निश्चित आवश्यकता होती है। उससे अधिक पानी का खेत में आना अथवा बना रहना हानिकारक

होता है। यही कारण है। कि आतिवृष्टि तथा अनावृष्टि दोनों को प्राचीन काल से दैवी प्रकोप के रूप में माना गया है।

**जल जमाव से हानियाँ**- अधिक वर्षा तथा बाढ़ के कारण जब खेत में आवश्यकता से अधिक पानी, अधिक समय तक रुका रह जाय तो खेत की फसल पीली पड़कर नष्ट होने लगती है। वास्तव में यह परिवर्तन खेतों या बगीचों में अतिरिक्त पानी भरे रहने के कारण ही होता है।

**जल की अधिकता के कारण निम्नालिखित हानियाँ होती हैं -**

**1)मृदा वायु संचार में कमी** - जल की अधिकता के कारण मिट्टी के रन्ध्राकाश में पायी जाने वाली वायु निकल जाती है और उसके स्थान पर पानी भर जाता है।मिट्टी में वायु के संचार में कमी होने से फसलों पर निम्नालिखित कुप्रभाव पड़ते हैं -

क) जाड़ो की जैविक क्रियाआें के संचालन के लिए पर्याप्त वायु नहीं मिल पाती है। जिससे जाड़ों की वृद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है और फसल कमजोर हो जाती है।

ख) आक्सीजन की कमी तथा कार्बन डाई ऑक्साइड की अधिकता के कारण जाड़ों द्वारा जल का अवशोषण कम हो जाता है और पौधे मुरझाने लगते हैं ।

ग) जाड़ों द्वारा भूमि से पोषक तत्त्वों के अवशोषण की क्रिया रुक जाती है, जिससे पौधे की वृद्धि तथा विकास बुरी तरह प्रभावित होता है।

घ) भूमि में आक्सीजन की कमी के कारण कुछ रासायनिक पदार्थ विषैले पदार्थ में बदल जाते हैं जिससे फसलों की वृद्धि एवं विकास प्रभावित होता है।

2) **मृदा ताप में कमी**- भूमि में नमी की मात्रा बढ़ने पर उसका तापक्रम कम हो जाता है। जिसके कारण फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा ऊष्मा का अधिकांश भाग पानी को वाष्प के रूप में बदलने में ही नष्ट हो जाता है। अत: भूमि ठण्डी हो जाती है।

3) **मिट्टी में हानिकारक लवणों का एकत्रित होंना**- मिट्टी में अधिक समय तक पानी भरे रहने के कारण मिट्टी के नीचे का जल-स्तर ऊपर उठ जाता है और निचली तहों के हानिकारक विलेय लवण वाष्पन के कारण धीरे-धीरे ऊपरी तह पर आकर एकत्रित होंने लगते हैं जिससे भूमि अनुपजाऊ तथा ऊसर हो जाती है।

4)**भूमि का दलदली हो जाना** - अधिक समय तक पानी भरे रहने के कारण भूमि दलदली हो जाती है।दलदली भूमि में फसल उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त हो जाती है और उसमें जंगली घास-फूस उगने लगती है। इस प्रकार भूमि कृषि के लिए अनुपयुक्त हो जाती है।

5)**लाभदायक मृदा जीवाणुआें के कार्य में बाधा**- भूमि में जल की अधिकता के कारण उपयोगी जीवाणुआें की संख्या तथा क्रिया शीलता में कमी आ जाती है। अत: भूमि की उर्वरा शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

**जल निकास से लाभ** - जल निकास से भूमि तथा फसलों को निम्नालिखित लाभ होते हैं-

1) भूमि शीघ्र ही कृषि कार्य करने योग्य हो जाती है।

2) जल - निकास की उचित व्यवस्था होने पर मिट्टी का ताप संतुलित रहता है। जिसके कारण बीजों का अंकुरण शीघ्र तथा अच्छा होता है और पौधों की वृद्धि अच्छी होती है।

3) पौधों की जाड़े गहराई तक जाती हैं अत: पौधों के लिए पोषक तत्व प्राप्त करने का क्षेत्र बढ़ जाता है।

4) भूमि में उपस्थित हानिकारक लवण अतिरिक्त पानी के साथ बह जाते हैं और भूमि ऊसर नहीं होने पाती।

5) मिट्टी की संरचना में सुधार हो जाता है। अतिरिक्त पानी निकल जाने से मिट्टी में पानी की आवश्यक मात्रा ही रह जाती है। जिसके कारण भू-परिष्करण की क्रियाएं उचित समय पर तथा आसानी से की जा सकती हैं ।

6) मृदा जीवाणुआें की संख्या तथा क्रियाशीलता बढ़ जाती है। जिससे भूमि की उर्वरता में वृद्धि होती है।

**जल निकास का प्रबन्ध**

जल निकास के उचित प्रबन्धन के अभाव में लाखों हेक्टेयर भूमि पर उगायी जाने वाली फसलों से औसत उपज नहीं मिल पाती है। बाढ़ तथा आति वृष्टि के कारण प्रतिवर्ष हजारों हेक्टेयर भूमि की फसलें नष्ट हो जाती हैं। उत्तर प्रदेश में हजारों हेक्टेयर भूमि ऐसी है जो वर्ष के अधिकांश महीनों में पानी भरा रहने के कारण कृषि के लिए अयोग्य हो गयी है और खाली पड़ी रहती है। अत: जल निकास का समुचित प्रबन्धन करके हजारों हेक्टेयर

अतिरिक्त भूमि में फसलें उगायी जा सकती हैं और उपज में प्रति हेक्टेयर 30 से 40 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है।

जल निकास का प्रबन्धन मुख्यत: निम्नालिखित दो विधियों से किया जाता है। -

1) सतहों खुली नालियों द्वारा

2) भूमिगत बन्द नालियों द्वारा

1) **खुली हुई नालियों द्वारा**- दो खेतों के बीच में एक चौड़ी जल निकास नाली बना दी जाती है। जिससे दोनो खेतों का अतिरिक्त जल एक नाली से ही निकाला जा सके। खुली हुई निकास नालियाँ खेत की सतहों से 30 सेमी गहरी तथा लगभग 75 सेमी ऊँची और यथा सम्भव सीधी बनायी जाती हैं उनमें ढाल कम रखा जाता है। जिससे भूमि का कटाव नही सके। खुली हुई निकास नालियाँ अंग्रेजी के V अक्षर के आकार की होती हैं अर्थात नीचे की ओर इनकी चौड़ाई कम तथा ऊपर की ओर अधिक रहती है। इन जल निकास नालियों को एक बड़ी नाली में मिला दिया जाता है और बड़ी नाली को किसी प्राकृतिक नाले, झील या तालाब से मिलाकर अतिरिक्त पानी को क्षेत्र के बाहर निकालने का प्रबन्ध कर दिया जाता है।

**खुली हुई नालियों के गुण-**

1) इस विधि से अतिरिक्त जल को आसानी से खेत के बाहर निकाला जा सकता है।

2) इसकी कमियों को आसानी से दूर किया जा सकता है।

3) इसमें अधिक ढाल की जरूरत नहीं होती है।

**खुली हुई नालियों के दोष-**

1) नाली के खुला रहने पर भूमि कुछ कम हो जाती है।

2) खेत की जुताई एवं निराई-गुड़ाई में बाधा होती है।

3) नाली में जमी मिट्टी (गाद) को हमेशा निकालना पड़ता है।

4) खरपतवार की समस्या अधिक होती है।

**भूमिगत (बन्द) नालियाँ** - बन्द नालियाँ भूमि के अन्दर लगभग एक मीटर की गहराई पर बनायी जाती हैं क्योंकि कुछ स्थानों में जल स्तर ऊचाँ उठ जाने के कारण मूल-क्षेत्र (Root Zone ) में प्राय: पानी भरा रहता है।ऐसे स्थानों में धरातल पर बनी नालियों से विशेष प्रयोजन सिद्ध्र नहीं होता है। अत: भूमिगत जल-निकास नालियों के बनवाने की आवश्यकता होती है।ये नालियाँ त्तीन प्रकार की होती हैं -

1)**पोल जल निकास नालियाँ**- जहाँ लकड़ी आसानी से मिल जाती है। उन स्थानों के लिए इस प्रकार की निकास नालियाँ बहुत उत्तम रहती हैं। जल निकास नालियाँ 80 से 90 सेमी गहरी एवं 30 सेमी चौड़ी होती हैं।लकड़ी के टुकड़ों को तिकोने आकार में गिन -चुनकर रख दिया जाता है। इसके अगल-बगल को लकड़ियों से भर दिया जाता है।

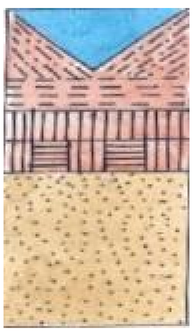

**चित्र 7.5 पोल जल निकास नाली**

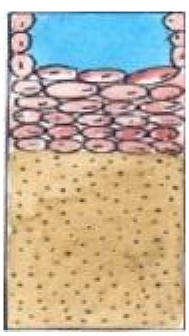

**चित्र 7.5 स्टोन जल निकास नाली**

2)**स्टोन जल निकास नाली** - अवमृदा जल निकास नालियों को बनाने के लिए पत्थरों का प्रयोग किया जाता है। इस ढंग में पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों को इस प्रकार चुनकर रखा जाता है कि एक नाली बन जाती है। ऊपर से मिट्टी डाल दी जाती है और इन नालियों को मुख्य नाली से जोड़कर किसी नदी, तालाब या झील में मिला देते हैं ।

3)**टाइल ड्रेन्स** - टाइल्स से बनी भूमिगत जल निकास नालियाँ सर्वोत्तम होती हैं। ये अपेक्षाकृत बहुत दिनों तक काम देती हैं और इन टाइल्स को कुम्हार भी तैयार कर

सकता है। ये टाइल्स (खपड़े) अर्द्ध गोलाकार होते हैं। इनका भीतरी व्यास कम से कम 10 सेमी होता है। इन नालियों में 30 मी की लम्बाई पर 5.0 सेमी ढाल रखा जाता है।

**अभ्यास के प्रश्न**

**1) निम्नालिखित प्रश्नों के सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइये -**

i)सरसों की सिंचाई किस विधि से की जाती है ?

क) नाली विधि ख) थाला विधि

ग) क्यारी विधि घ) जल-प्लवन विधि

ii)आलू की फसल की सिंचाई किस विधि से की जाती है ?

क) क्यारी विधि ख) छिड़काव विधि

ग) थाला विधि घ) कूँड़ विधि

iii)ऊँची - नीची भूमि की सिंचाई किस विधि से करते हैं ?

क) क्यारी विधि ख) थाला विधि

ग) छिड़काव विधि घ) कूँड़ विधि

iv)खेत में जल भराव से मृदा ताप -

क) घटता है। ख) बढ़ता है।

ग) स्थिर रहता है। घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1) ..................विधि सिंचाई की उत्तम विधि है। (क्यारी / थाला )

2) ..................की कमी के कारण अंकुरण अच्छा नहीं होता है। (नमी / सूखा)

3) ..................विधि से आलू के खेत की सिंचाई की जाती है। (कूँड़ / थाला)

4) ..................विधि में अधिक धन तथा कुशल श्रम की आवश्यकता पड़ती है।( ड्रिप / प्रवाह)

5) खेत से अतिरिक्त..................का निकालना ही जल निकास कहलाता है।( जल / मृदा)

3) निम्नालिखित कथनो में सही के सामने **(√)** का तथा गलत के सामने **(x)** का निशान लगाइये -

1) प्रवाह विधि से आलू की फसल की सिंचाई की जाती है।

2) प्रवाह विधि में कम श्रम की आवश्यकता होती है।

3) क्यारी विधि से गेहूँ की सिंचाई नहीं की जाती है।

4) कूँड़ विधि से गन्ने की सिंचाई की जाती है।

5) थाला विधि से पपीते के बाग की सिंचाई की जाती है।

4) निम्नालिखित में स्तम्भ `क' का स्तम्भ `ख' से सुमेल कीजिए -

| **स्तम्भ `क'** | **स्तम्भ `ख'** |
|---|---|
| 1)गेहूँ की सिंचाई | भूमिगत नाली |
| 2)धान की सिंचाई | प्रवाह या जल प्लवन विधि |
| 3)जल निकास विधि | क्यारी विधि |
| 4)जल भराव भूमि | दलदली |

5) सिंचाई देर से करने पर फसलों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

6) जल भराव से पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

7) छिड़काव विधि क्या है ? भारत में यह विधि अभी तक अधिक लोकप्रिय क्यों नहीं हो सकी है ?

8) थाला विधि से सिंचाई के दो लाभ लिखिए।

9) जल जमाव से होने वाली दो हानियाँ बताइए ।

10) उचित जल निकास का मिट्टी पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

11) थाला विधि की सिंचाई का चित्र बनाइए ।

12) आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने से फसल पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

13) सिंचाई का अर्थ समझाइए।सिंचाई की कितनी विधियाँ होती हैं ? किन्ही दो विधियों का सचित्र वर्णन कीजिए।

14) प्रवाह तथा ड्रिप विधि के गुण और दोष लिखिए ।

15) फलदार वृक्षों के लिए आप सिंचाई की किस विधि को अपनायेंगे और क्यों ? वर्णन कीजिए।

16) जल निकास का अर्थ समझाइए । जल जमाव से होने वाली हानियों का वर्णन कीजिए ।

17) मृदा से जल निकास कितने प्रकार से किया जाता है? जल निकास की किसी एक विधि का सचित्र वर्णन कीजिए ।

**प्रोजक्ट कार्य**

क) अपने विद्यालय की वाटिका में फलदार वृक्षों को लगाकर थाला विधि से उनकी सिंचाई कीजिए ।

ख) आप अपने बगीचों में किन-किन विधियों से सिंचाई करते हैं ? उनकी सूची तैयार करके, कंठस्थ कीजिए।

back

# इकाई - 8 सामान्य फसलें एवं फसल चक्र

HX4WE9

- **गन्ना, आलू एवं बरसीम की उन्नतशील कृषि**
- **फसल चक्र की परिभाषा**
- **फसल चक्र के सिद्धान्त**
- **फसल चक्र से लाभ**

## गन्ना की उन्नत खेती

**परिचय तथा क्षेत्र** - भारत में गन्ने की खेती प्राचीन काल से होती आ रही है।विशेषज्ञों के अनुसार चीन, जापान, मिस्र और अरब देशों को गन्ना भारत से ही गया था ।

कपड़ा उद्योग के बाद भारत में चीनी उद्योग का दूसरा स्थान है, चीनी गन्ने से बनायी जाती है। उत्तर प्रदेश में कुल क्षेत्रफल का लगभग 18.57%भू भाग पर गन्ने की खेती की जाती है। जिससे लगभग 29-42 लाख टन गन्ना पैदा होता है।इसकी खेती गोरखपुर तथा मेरठ मण्डल में सबसे ज्यादा होती है।

**जलवायु**- गन्ने की अच्छी फसल के लिए गर्म और तर जलवायु, जहाँ औसत वर्षा 75से 90सेमी होती है,सर्वोत्तम होती है। अधिक वर्षा से गन्ने में चीनी का अंश कम हो जाता है और ज्यादा सूखा पड़ने पर गन्ने में रेशे की मात्रा बढ़ जाती है। अत: वर्ष के अधिकांश समय में गर्म नम मौसम का रहना आवश्यक है।

**मिट्टी-** गन्ने के लिए दोमट अथवा मटियार दोमट मिट्टी अच्छी होती है। हल्की दोमट या बलुई मिट्टी में फसल के गिर जाने की सम्भावना रहती है।

**खेत की तैयारी**-गन्ने के लिए पहले गहरी जुताई फिर मिट्टी पलट हल से जुताई और देशी हल से 2-3 जुताई करना चाहिए।

**खाद तथा उर्वरक** - गन्ने की अच्छी पैदावार के लिए 150 किग्रा नाइट्रोजन , 80-100 किग्रा फास्फोरस तथा 60-80 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर देना आवश्यक होता है। यदि गोबर या हरी खाद गन्ना बोने से एक माह पूर्व खेत में मिला दी जाय तो पैदावार उत्तम होती है। नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा बुवाई के समय,1/3 मात्रा कल्ले फूटते समय तथा 1/3 फसल वृद्धि के समय देना चाहिए।

**बीज की मात्रा** - गन्ने के बीज की मात्रा गन्ने की मोटाई पर निर्भर करती है।औसत मोटाई के गन्ने का 50-60 कुन्तल बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है।

**बुवाई का समय** - गन्ने की बुवाई शरद कालीन तथा बसन्त कालीन फसलों के रूप में की जाती है।

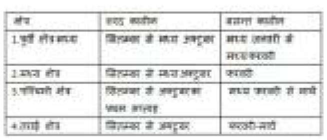

| क्षेत्र | शरद कालीन | बसन्त कालीन |
| --- | --- | --- |
| 1.पूर्वी क्षेत्र | सितम्बर के मध्य अक्टूबर | मध्य जनवरी से मध्य फरवरी |
| 2.मध्य क्षेत्र | सितम्बर से मध्य अक्टूबर | फरवरी |
| 3.पश्चिमी क्षेत्र | सितम्बर से अक्टूबर का प्रथम सप्ताह | मध्य फरवरी से मार्च |
| 4.तराई क्षेत्र | सितम्बर से अक्टूबर | फरवरी-मार्च |

## चित्र 8.1 गन्ना की खेती

### गन्ने की उन्नतशील किस्में

गन्ने की उन्नतशील किस्में–

| क्षेत्र | अगोती जातियाँ | पछेली जातियाँ |
|---|---|---|
| पूर्वी क्षेत्र | बी.ओ. 47 | |
| | को. 687 | बी.ओ. 91 |
| | को. | सी.एल.ओ.के. 8102 |
| | को 395 | सी.एल.ओ.के. 8501 |
| मध्य क्षेत्र | को 510 | को 1147 |
| | को 64 | को 1158 |
| | बी.ओ. 47 | को 63035 |
| | बी.ओ. 54 | को. शा. 510 |
| पश्चिमी क्षेत्र | को 1336 | को 767 |
| | को 6613 | को 802 |
| | को 1147 | यू.पी. 5 |
| | को 6425 | को 918 |
| तराई क्षेत्र | को 1148 | को 617 |
| | को 1336 | पी.ओ. 70 |
| | को.शा. 611 | पी.ओ. 74 |
| | को.शा. 1157 | को 91238 |

## गन्ने की बुवाई-

1) सिर से सिर को मिलाकर 2)अँखुए से अँखुए को मिलाकर

प्राय: सिर से सिर को मिलाकर ही गन्ना बोते हैं क्योंकि इस विधि से बीज तथा श्रम दोनों की बचत होंती है। आगे -आगे हल से खेत जोतते जाते हैं और पीछे-पीछे कूँड़ में गन्ने के टुकड़े बोते जाते हैं। बाद में पाटा लगाकर खेत में निकले टुकड़ों को ढक दिया जाता है। कूँड़ों की गहराई 20-25 सेमी तथा कूँड़ की कूँड़ से दूरी 30-40 सेमी तक रखी जाती है।गन्ने के टुकड़े को इस प्रकार काटना चाहिए कि उसमें लगभग तीन अाँखे अवश्य हों ।

**बीज का उपचार**-एगलाल-3 की 625 ग्राम मात्रा को 125 लीटर पानी में घोलकर गन्ने के टुकड़ों को भली प्रकार उसमें डुबोकर बोने से गन्ने की फसल में रोग लगने की सम्भावना कम हो जाती है।

**सिंचाई**- मैदानी क्षेत्र में शरद कालीन फसल में चार या पाँच सिंचाई बरसात से पहले तथा दो सिंचाई बरसात के बाद की जाती हैं। बसन्त कालीन फसल में चार सिंचाई वर्षा के पहले तथा दो सिंचाई वर्षा के बाद की जाती है।एक सिंचाई कल्ले निकलते समय अवश्य करनी चाहिए ।

**निराई-गुड़ाई**-गन्ने की खेती में गुड़ाई का बहुत महत्व है। एक कहावत है **कि तीन सिंचाई तेरह गोड़ तब देखो गन्ने की पोड़** । सामान्यत: प्रत्येक सिंचाई के बाद गुड़ाई करनी चाहिए ।

**मिट्टी चढ़ाना** - फसल की अच्छी वृद्धि तथा गिरने से बचाने के लिए पौधों पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक होता है।यह कार्य सामान्यत:गुड़ाई के समय ही किया जाता है।

**खरपतवार की रोकथाम** - शरद ऋतु में बोये गये गन्ने में 30 दिन बाद 2,4 डी नामक रसायन की 1-2 किग्रा मात्रा 500 से 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़क देनी चाहिए ।

**बँधाई**- गन्ने की बँधाई फसल को गिराने से बचाने हेतु बरसात की शुरुआत में ही कर देना चाहिए । गन्ने को आपस में उन्ही की पत्तियों से बाँध दिया जाता है।

**फसल की सुरक्षा**

क) **कीड़ो की रोकथाम** - अप्रैल व मई में अगोला बेधक और अगस्त व सितम्बर में तना और मूल बेधक की रोकथाम के लिए 2 लीटर थायोडॉन 35 ई.सी. 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए । यदि खेत में पायरिला त्तथा सफेद मक्खी का प्रकोप हो तो 1.5 लीटर मैलाथियान, 50 ई. सी. या 1.5 लीटर मेटा सिस्टाक्स, 25 ई.सी. या 300-400 मिली डाइमेक्रान 100 ई.सी. की दवा 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। यदि खड़ी फसल में दीमक का प्रकोप हो तो 3.75 लीटर गामा बी.एच.सी.दवा को सिंचाई के समय खेत में डाल देना चाहिए ।

ख) **बीमारियों की रोकथाम** - गन्ने की बीमरियां हमेशा बीज से फैलती हैं।

1) बीज हमेशा रोग रहित बोना चाहिए ।

2) बुवाई के समय बीज को एगलाल या एराटान के 0.25% घोल से उपचरित करके बोना चाहिए ।

3) रोगी व कमजोर फसल की पेंड़ी नहीं लेनी चाहिए ।

**कटाई** -गन्ने की सामान्यत: कटाई नवम्बर के मध्य से की जाती है और मार्च- अप्रैल के महीने तक चलती है।कटाई उसी समय करनी चाहिए जब फसल पूर्णत: पक जाय और चीनी का बनना रुक जाय ।

**उपज**- उपर्युक्त विधि से खेती करने पर शरद कालीन फसल से 800-1000 कुन्तल तथा बसन्त कालीन फसल से 600-700 कुन्तल गन्ना प्रति हेक्टेयर प्राप्त हों जाता है।

**पेंड़ी लगाना**- गन्ने से पेंड़ी की एक फसल लेना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है। परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाय कि पेंड़ी लेने के उद्देश्य से वही फसलें बोयी जाए जिनकी पेंड़ी अच्छी रहती हो। गन्ना काटने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिए तथा बाद में 15 -20 दिन के अन्तर से सिंचाई करना चाहिए।पेंड़ी के लिए आमतौर पर 20 प्रतिशत अधिक नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है।

**गुड़ उत्पादन** - गन्ने की पेराई सामान्यत: बैलों से चलने वाले कोल्ह अथवा बिजली से चलने वाली क्रेशर मशीन से की जाती है।कोल्हू से 60-65% तथा क्रेशर से 65-70% रस निकलता है। इस प्रकार प्राप्त रस को बड़े-बड़े कड़ाहों में गर्म करके विभिन्न क्रियाआें द्वारा गुड़ या खांड प्राप्त की जाती है।

100 कुन्तल गन्ने से विभिन्न पदार्थ की निम्नालिखित मात्रा प्राप्त होंती है। -

रस - 60-70 कुन्तल या

राब -14 कुन्तल या

गुड़ - 12 कुन्तल या

चीनी - 10 कुन्तल

## सूरजमुखी की खेती

## परिचय तथा क्षेत्र

सूरजमुखी भारत की प्रमुख तिलहनी फसलों में से एक है। इसके बीज में औसतन 40-45 उच्च गुणवत्ता युक्त तेल पाया जाता है। इसके तेल में विटामिन ए, डी एवं ई प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। जो उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगियों के लिए अच्छा होता है। इसके तेल से साबुन, वनस्पति घी तथा अनेक सौन्दर्य प्रसाधन बनाये जाते हैं और इसकी खली मुर्गियों का अच्छा आहार है।

भारत में सूरजमुखी की खेती लगभग सभी राज्यों में की जाती है। उत्तर प्रदेश में इसकी खेती कानपुर एवं फर्रूखाबाद जिले में काफी क्षेत्रफल पर की जाती है।

## जलवायु

इसे वर्ष में किसी भी ऋतु में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। सूरजमुखी के बीजों के अंकुरण एवं वृद्धि के लिए गर्म मौसम तथा फूलने के बाद पकने तक तेज धूप की आवश्यकता पड़ती है।

## मिट्टी

परन्तु उचित जल निकास वाली दोमट अथवा भारी दोमट मिट्टियाँ इसकी खेती के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं।

## खेत की तैयारी

पहली जुताई मिट्टी पलट हल से करने के बाद3-4 जुताइयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से खेत तैयार कर लेना चाहिए। रबी या जायद की फसल हेतु पहले पलेवा (बुवाई पूर्व सिंचाई)

करके खेत की तैयारी करनी चाहिए।

**खाद तथा उर्वरक**

संकर प्रजातियों के लिए 100 किग्रा नाइट्रोजन तथा संकुल प्रजातियों के लिए 80 किग्रा नाइट्रोजन और 60 किग्रा फास्फोरस एवं 40 किग्रा पोटाश के साथ 200 किग्रा जिप्सम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। प्रति हेक्टेयर 300-400 कुन्तल गोबर या कम्पोस्ट खाद के प्रयोग करने से फसल की अच्छी उपज प्राप्त होती है।

चित्र 8,2 सूरजमुखी की खेती

**उन्नतशील प्रजातियाँ**

सूरजमुखी की संकुल प्रजातियों में मार्डन एवं सूर्या प्रमुख है तथा संकर प्रजातियों में के। वी।एस।एच। -1, एम.एस.एफ.एच.-17 एस.एच.3322 प्रमुख हैं।

**बुवाई का समय**

इसकी बुवाई वर्ष की तीनों ऋतुओं में की जा सकती है -

खरीफ - जून, जुलाई

रबी - अक्टूबर-नवम्बर

जायद (बसन्त) - मध्य फरवरी से मध्य मार्

**बीज की मात्रा एवं बीज का उपचार**

सूरजमुखी का 8-10 किग्रा बीज एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है। बुवाई से पहले बीज को रातभर पानी में भिगोकर बोने से अंकुरण अच्छा एवं एक समान होता है। बोने से पूर्व बीज को 3 ग्राम थीरम या कार्बेन्डाजिम प्रति किग्रा। बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए। सदैव प्रमाणित बीज का प्रयोग करना चाहिए।

## बुवाई की विधि

सूरजमुखी की बुवाई देशी हल या सीड ड्रिल से पंक्तियों में करना चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45सेमी तथा पौध से पौध की दूरी 20 सेमी रखते हैं।

## विरलन

बीज बोने के15 से 20 दिनों के बाद पंक्तियों में उगे हुए फालतू एवं कमजोर पौधों को उखाड़ देते हैं।

## सिंचाई तथा जल निकास

खरीफ की फसल के लिए प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। किन्तु फूल एवं दाना बनते समय खेत में नमी न होने की दशा में एक हल्की सिंचाई आवश्यक होती है। रबी एवं जायद की फसलों में कुल 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। खेत में फालतू पानी को निकाल देना चाहिए।

## निराई-गुड़ाई

खर पतवारों के नियन्त्रण के लिए खुरपी से दो बार क्रमशः बुवाई के बाद 30-35 दिन पर तथा 55-60 दिन पर निराई करने से फसल की अच्छी वृद्धि होती है। खरपतवारों के रासायनिक नियन्त्रण के लिए पेण्डीमिथेलिन 30 ई.सी. दवा की 3.3 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 800-1000 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 2-3 दिनों के अन्दर छिड़काव कर देना चाहिए।

## मिट्टी चढ़ाना

सूरजमुखी का फूल काफी बड़ा होने के कारण पौधों के गिरने का भय रहता है। अतः फसल में शेष आधी नाइट्रोजन देने बाद एवं निराई गुड़ाई करते समय एक बार पौधों पर 10-15 सेमी ऊँची मिट्टी चढ़ा देना चाहिए।

## रखवाली

सूरजमुखी का फूल आकर्षक होने के कारण चिड़ियाँ बहुत अधिक नुकसान करती हैं। चिड़ियों से फसल की सुरक्षा के लिए रखवाली अति आवश्यक है

**फसल सुरक्षा**

**कीट नियन्त्रण**

सूरजमुखी में कभी-कभी दीमक, हरे फुदके तथा चना के फली बेधक का प्रकोप होता है। दीमक के नियन्त्रण के लिए क्लोरपायरीफास दवा बोने के समय खेत में मिला देना चाहिए। हरे फुदके पत्तियों का रस चूस कर नुकसान पहुँचाते है। इनके नियन्त्रण के लिए एजाडिरेविटन 0.15 ई.सी की 1 लीटर मात्रा 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव कर देना चाहिए। चना के फली बेधक की सूडियाँ मुण्डक के दानों को खा जाती हैं इनकी रोकथाम के लिए विवनालफास 25 ई.सी. की 2 ली। मात्रा को 800-1000 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

**रोग नियन्त्रण**

खरीफ ऋतु वाली फसल में फफूँदजनित अंगमारी का प्रकोप अधिक होता है। डाइथेन एम-45 की 2.5 किग्रा मात्रा को 800-1000 लीटर पानी में घोल बनाकर 10-15 दिनों के अन्तर पर दो या तीन बाद छिड़काव करना चाहिए।

**कटाई, मड़ाई तथा भण्डारण**

जब मुण्डक के फूल पककर सिकुड़ जायें और मुण्डक का निचला भाग भूरे रंग का हो जाय तो इसे काटकर धूप में सुखा लेना चाहिए। सूखने के बाद मुण्डकों की डण्डे या थ्रेसर से मड़ाई कर सकते हैं।

भण्डारण से पूर्व बीजों को धूप में 8-10 नमी होने तक अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए और मडाई के तीन माह के अन्दर बीजों से तेल निकाल लेना चाहिए अन्यथा तेल के स्वाद में कड़वाहट आ जाती है।

**उपज**

उन्नत ढंग से खेती करने से संकुल प्रजातियों की उपज 12-15 कु./ हेक्टेयर तथा संकर प्रजातियों की उपज 20-25कु./ हेक्टेयर प्राप्त की जा सकी है।

**बरसीम की खेती**

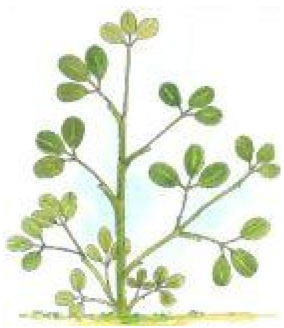

**चित्र 8.2 बरसीम की खेती**

हरे चारे वाली फसलों में बरसीम एक आदर्श फसल है। दलहनी फसल होने के कारण बरसीम के पौधों में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करने का गुण पाया जाता है। जिस खेत में बरसीम बोई जाती है। उस की उर्वरता में वृद्धि होती है। बरसीम का हरा चारा पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होता है। इसे पशु चाव से खाते हैं।टेट्राप्लाइड बरसीम प्रजाति से हरे चारे का अधिक उत्पादन होता है।

**जलवायु**- बरसीम की खेती ठण्डी तथा शुष्क जलवायु में की जाती है। इसके अंकुरण एवं वृद्धि के लिए 15-20°से.तापमान होना चाहिए ।

**बरसीम की प्रजातियाँ-** बरदान, मिसकावी, लुधियाना बरसीम-1,लुधियाना बरसीम-22, झाँसी बरसीम-1,जे. एच. बी. 146, यू. पी. बी.-10 इत्यादि ।

**भूमि**- बरसीम की खेती सभी प्रकार की भूमि में सुगमता पूर्वक की जा सकती है। बरसीम के लिए दोमट भूमि सर्वोत्तम होती है। इसे हल्की ऊसर भूमि में भी उगाया जा सकता है।

**खेत की तैयारी**- खरीफ की फसल काटने के बाद एक जुताई मिट्टी पलट हल से तथा 3-4 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। जुताइयों के बाद पाटा चलाकर भूमि को समतल कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् सिंचाई के लिए खेत में नालियाँ तथा क्यारियाँ बना लेनी चाहिए ।

**खाद तथा उर्वरक** - बरसीम की फसल को नाइट्रोजन वायुमंडण्ल से प्राप्त होंती रहती है। अत: इसमें बाहर से नाइट्रोजन देने की आवश्यकता नहीं होती है।फास्फोरस वाली खाद प्रयोग करने से चारे के उत्पादन में वृद्धि होती है। अत: बरसीम में 50-60 किग्रा फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देना चाहिए । कमजोर भूमि में 20-30 किग्रा नाइट्रोजन 40 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग की जानी चाहिए।

**बीज और बुवाई**- एक हेक्टेयर खेत में 25-30 किग्रा बीज बोना चाहिए। बरसीम की बुवाई का सर्वोत्तम समय अक्टूबर का प्रथम तथा द्वितीय सप्ताह है तथा विलम्ब से 15 नवम्बर तक बोया जा सकता है।टेट्राप्लाइड किस्में कम तापमान पर एवं देशी किस्में अधिक तापमान पर अच्छी उपज देती हैं ।

**बरसीम के बीज का उपचार** - बरसीम के बीज में प्राय: कासनी खरपतवार का बीज मिला होता है। इसे अलग करने के लिए 5 प्रतिशत नमक के घोल में बरसीम का बीज डाल देते हैं। बरसीम का बीज नीचे बैठ जाता है तथा कासनी का बीज ऊपर तैरने लगता है। जिसको अलग कर दिया जाता है। इस प्रकार बरसीम का शुद्ध बीज बुवाई के लिए प्राप्त हों जाता है।बरसीम का बीज प्रथम बार बोने से पूर्व बरसीम कल्चर ( राइजोबियम कल्चर) के साथ मिलाना चाहिए ।

**कल्चर के प्रयोग से लाभ :**-

1) बीज का अच्छा अंकुरण होता है।

2) पौधों का विकास एवं वृद्धि तेजी से होता है।

3) भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है।

4) पौधे नाइट्रोजन की आवश्यकता की पूर्ति स्वयं कर लेते हैं ।

5) अधिक उपज प्राप्त होंती है।

**बरसीम कल्चर (मिलाने का ढंग)**-150 ग्राम गुड़ को 1 लीटर पानी में घोलकर गर्म करने के बाद ठण्डा कर लिया जाता है। इस ठण्डे घोल में 600 ग्राम कल्चर मिलाना चाहिए ।इसके बाद 15 किग्रा बरसीम का बीज एक चौड़े बर्तन में लेकर कल्चर घोल को भली भांति मिला लेना चाहिए। इस मिश्रण को छाया में सुखा लेना चाहिए। सुखाने के तुरन्त बाद बोवाई कर देनी चाहिए । जिस खेत में पहले बरसीम बोई गई हो बरसीम कल्चर उपलब्ध नहीने पर, उस खेत की 50-60 किग्रा भुरभुरी मिट्टी बीज में मिला कर बुवाई कर देनी चाहिए।

**बीज बोने का ढंग- बरसीम बोने की दो विधियाँ हैं -**

1) शुष्क विधि- खेत में बीज छिड़क कर उसी खेत की मिट्टी गोबर की खाद में मिलाकर ऊपर से छिड़क देना चाहिए। इसके तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिए ।

2) भीगी विधि- सर्वप्रथम खेत में पानी भर दिया जाता है। इसके बाद खेत में बीज छिड़क दिया जाता है।

**सिंचाई** - बरसीम के लिए सिंचाई की सुविधा होना नितान्त आवश्यक है। जहाँ पर सिंचाई की सुविधा नही वहाँ बरसीम की खेती नहीं करनी चाहिए । बरसीम को 10-12 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। लेकिन यह सिंचाई की संख्या भूमि की किस्म पर निर्भर करती है। बीज बोने के पश्चात हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है। दिसम्बर, जनवरी में एक -एक बार एवं फरवरी, मार्च में 15 दिन के अन्तर पर सिंचाई की जाती है।

**कटाई**- बरसीम की प्रथम कटाई 45-50 दिन बाद की जाती है। इसके बाद मार्च तक हर 20 दिन पर कटाई करनी चाहिए । इस प्रकार समय पर बोई गयी बरसीम की फसल की 6-7 कटाई की जा सकती हैं। इसकी कटाई हमेशा 5-6 सेमी की ऊचाँई से करनी चाहिए।

**बीज उत्पादन** - बीज के लिए बोई जाने वाली बरसीम की कम मात्रा प्रयोग करने से उत्पादन अच्छा होता है। इसकी कटाई मार्च के बाद नहीं करनी चाहिए। बीज पक जाने पर

कटाई एवं मड़ाई कर लेनी चाहिए ।

**उपज** - बरसीम के हरे चारे का औसत उत्पादन 500-600 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होता है।

**फसल चक्र**

किसान एक मौसम में एक फसल (मक्का) दूसरे मौसम में दूसरी फसल (गेहूँ, मटर ) और तीसरे मौसम में तीसरी फसल जैसे(मूंग) आदि बोते हैं कभी-कभी एक मौसम में एक फसल बोने के बाद दूसरे मौसम में खेत को खाली या परती छोड़ देते हैं। केवल दो मौसम बरसात एवं जाड़े में फसल लेते हैं एवं जायद की फसलें नहीं बोते हैं। हमारे प्रदेश में इस प्रकार की खेती पद्धति प्रचलित है। जिस खेत में फसलें अदल-बदल कर बोयी जाती हैं या खेत को एक मौसम में परती छोड़ देते हैं तो उसमें उन खेतों की अपेक्षा जिनमें हमेशा एक ही प्रकार की फसल बोयी जाती है। या परती नहीं छोड़ी जाती है। अधिक पैदावार होती है। अत: हम कह सकते हैं कि

**``किसी निश्चित भूमि पर एक निश्चित अवधि तक फसलें अदल-बदल कर बोना, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहे, और अधिक पैदावार हो फसल चक्र कहलाता है।''**

**फसल चक्र के सिद्धान्त**

1) अधिक पानी चाहने वाली फसलों के बाद कम पानी चाहने वाली फसलें बोनी चाहिए जैसे धान के बाद मटर या चना ।

2) मूसला जाड़े वाली फसलों के बाद झकड़ा जाड़े वाली फसलें बोनी चाहिए जैसे अलसी के बाद मक्का, कपास के बाद गेहूँ।

3) दलहन वाली फसलों के बाद बिना दलहन वाली फसलें बोनी चाहिए जैसे अरहर (अगेती जति) के बाद गेहूँ।

4) अधिक जुताई के बाद कम जुताई वाली फसलें बोनी चाहिए जैसे गेहूँ के बाद मूगँ ।

5) एक ही कुल के पौधों को लगातार नहीं उगाना चाहिए जैसे मूगँ या उर्द के बाद चना या मटर नहीं बोना चाहिए ।

6) फसल चक्र के मुख्य सिद्धान्तों को अपना कर अधिकधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

**फसल चक्र से लाभ**

1)**भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी नहीं होती** - विभिन्न फसलों को विभिन्न तत्त्वों की भिन्न-भिन्न मात्रा की आवश्यकता होती हैजैसे एक हेक्टेयर भूमि से गेहूँ और तम्बाकू की फसलें क्रमश: 120 व 20 किग्रा नाइट्रोजन 80 व 50 किलो फास्फोरस और 60 व 75 किग्रा पोटाश लेती हैं। यदि एक खेत से लगातार कई वर्षो तक गेहूँ की फसल ली जाय और खेत में कोई खाद न दी जाय तो भूमि में नाइट्रोजन,फास्फोरस एवं पोटाश तीनों तत्त्वों की कमी हो जायेगी और कुछ समय बाद सामान्य फसलें भी नहीं उगायी जा सकती हैं।इसके अतिरिक्त फसलों की जड़े की प्रकृति भी एक सी नहीं होती है। कुछ फसलों की जड़े भूमि में गहरी जाती हैं और कुछ फसलों की जड़े उथली हो रहती हैं इसलिए फसल चक्र के प्रयोग से मिट्टी की किसी एक विशेष परत से तत्त्वों की क्षति नहीं हो पाती है।

2)**जैव पदार्थ का अभाव नहीं होता**- भिन्न - भिन्न प्रकार की फसलें लेने से भूमि के खरपतवार नष्ट होकर मिट्टी में मिल जाते हैं । इसके अतिरिक्त फसलों के अवशेष मिट्टी में हो छूट जाते हैं जो सड़कर खाद की कमी को पूरा करते हैं।

3)**फसलों का रोगों एवं कीटों से बचाव-** यदि एक हो फसल लगातार एक खेत में बोयी जाती है। तो उसमें बीमारियों तथा कीड़ो का प्रकोप अधिक होता है और ऐसी अवस्था आ जाती है। जब फसल उत्पन्न करना असम्भव हो जाता है।इसमें सरसों की माहू एवं धान की गंधी विशेष उल्लेखनीय है।

**4)खरपतवारों का नाश होता है।** - कुछ खरपतवार ऐसे होते हैं जो किसी विशेष फसल के साथ उगते हैं यदि यह फसल किसी खेत में अधिक समय तक न बोयी जाय तो उन खरपतवारों का अभाव हो जाता है।

5)**भूमि की भौतिक दशा में सुधार** - फसल चक्र के कारण मिट्टी में वायु व जल की कमी नहीं हो पाती और मिट्टी की रचना उत्तम बनी रहती है तथा मिट्टी का कटाव भी नहीं हो पाता जिससे मिट्टी तथा पोषक तत्व नष्ट होने से बच जाते हैं।

6)**भूमि विकार उत्पन्न नहीं होते**- कुछ मिट्टियॉ प्रकृति से क्षारीय तथा कुछ अम्लीय होती हैं। यदि क्षारीय मिट्टी से लगातार ऐसी फसलें ली जाय जो कैल्सियम, पोटैशियम तत्त्वों का कम शोषण करती हैं तो थोड़े हो समय में मिट्टी की क्षारीयता इतनी बढ़ जायेगी कि उसमें फसलों का उगाना कठिन होगा। इस प्रकार यदि अम्लीय मिट्टी में ऐसी फसलें उगायी जायें जो क्षारक तत्त्वों का शोषण करती हैं तो मिट्टी की अम्लीयता और अधिक बढ़ जायेगी ।

7) **फसल उत्पादन में व्यय कम होता है**।- अधिक पानी चाहने वाली फसलों के बाद कम पानी चाहने वाली फसलें जैसे धान-चना अधिक खाद चाहने वाली फसलों के बाद कम खाद चाहने वाली फसलें जैसे गेहूँ -मूगँ के बोने से पैदावार के साधनों का अच्छा उपयोग होता है। फलत: प्रति हेक्टेयर व्यय कम होता है।

8)**अधिक अन्न उपजाना** - फसल चक्र में कुछ ऐसी फसलों को बोया जा सकता है। जो शीघ्र पककर तैयार हो जाती हैं जैसे मक्का,गेहूँ तथा उर्द आदि। उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में किसान एक वर्ष में एक से अधिक (तीन-चार)फसलें उगाते हैं जिससे अधिक से अधिक उत्पादन सम्भव है।

9) **अधिकधिक आर्थिक लाभ कमाना**- जब किसान फसल चक्र के अनुसार एक वर्ष में 2-3 फसलें उगाता है तो पैदावार बढ़ती है और लाभ अधिक होता है।

10) फसल चक्र से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनी रहती है।

11) फसल चक्र से मानव एवं पशुश्रम का समुचित प्रयोग होता है।

12) कृषकों को वर्ष में कई बार धन प्राप्त हों सकता है। एवं बाजार की मांग पूर्ति की जा सकती है।

**विशेष - उत्तर प्रदेश के लिए क्षेत्रवार कुछ प्रमुख फसल चक्र**

**अ) पश्चिमी उत्तर प्रदेश**

| | | |
|---|---|---|
| 1) | धान - गेहूँ | 1 वर्ष |
| 2) | मक्का - आलू - प्याज | 1 वर्ष |
| 3) | ज्वार - बरसीम | 1 वर्ष |
| 4) | ज्वार - मटर - गन्ना | 2 वर्ष |

**ब) मध्य उत्तर प्रदेश**

| | | |
|---|---|---|
| 1) | बाजरा - जौ | 1 वर्ष |
| 2) | मक्का - गेहूँ | 1 वर्ष |
| 3) | मक्का - आलू - तम्बाकू | 2 वर्ष |
| 4) | मक्का - जौ - परती - गेहूँ | 2 वर्ष |

**स) पूर्वी क्षेत्र**

| | | |
|---|---|---|
| 1) | ज्वार - गेहूँ | 1 वर्ष |
| 2) | ज्वार - जई | 1 वर्ष |
| 3) | धान - मटर - परती - गेहूँ | 2 वर्ष |
| 4) | धान - चना - धान - जौ | 2 वर्ष |
| 5) | धान - मटर - सनई - गन्ना | 3 वर्ष |

**द) बुन्देलखण्ड क्षेत्र**

1) ज्वार - चना 1 वर्ष

2) परती - गेहूँ 1 वर्ष

3) परती - चना - ज्वार - चना 2 वर्ष

4) ज्वार - अरहर - गेहूँ 2 वर्ष

5) ज्वार - अरहर, परत - गेहूँ, तिल - अलसी 3 वर्ष

**विशेष**

*दलहनी फसलें जैसे चना आदि की जाड़ों में गांठें (रूट नोड्यूल्स) पायी जाती हैं जिसमें राइजोबियम नामक जीवाणु रहता है। जो मिट्टी में नाइट्रोजन की पूर्ति वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन से करता है।

*फसल उत्पादन तथा भूमि प्रबन्धन के सिद्धान्त और कृषि क्रियाआें का अध्ययन आगे चलकर कृषि विज्ञान की जिस शाखा के अन्तर्गत करते हैं उसे शस्य विज्ञान (एग्रोनामी) के नाम से जानते हैं ।

**अभ्यास के प्रश्न-**

1) सही विकल्प के सामने **(√)** का चिन्ह लगाइये -

**1 गन्ने की फसल के लिए उपयुक्त भूमि है। -**

क) दोमट ख) हल्की दोमट

ग) बलुई दोमट घ) उपर्युक्त सभी

**2) गन्ने की अच्छी पैदावार हेतु कितनी नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है ?**

क) 150 किग्रा प्रति हेक्टेयर ख) 100 किग्रा प्रति हेक्टेयर

ग) 50 किग्रा प्रति हेक्टेयर घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

**3) निम्न में से कौन सी प्रजाति आलू की उन्नत किस्म है ?**

क) के 617 ख) वरदान

ग) कुफरी ज्योति घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

**4) फसलों की पैदावार बढ़ाने का निम्नालिखित में से कौन सा साधन है ?**

क) लगातार एक हो फसल का बोना ख) फसल चक्र अपनाना

ग) अधिक पानी की व्यवस्था करना घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं ।

**2) निम्नालिखित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-**

(क)

(ख) गन्ने का बीज...............कुन्तल प्रति हेक्टेयर प्रयोग किया जाता है।

(ग) सूरजमुखी की बुवाई.............................. माह में होती है।

(घ) गन्ने की फसल के लिए प्रति हेक्टेयर............... नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है।

(ङ) बरसीम कल्चर में...............नामक जीवाणु पाये जाते हैं।

(च) बरसीम का बीज बुवाई के लिए...............किग्रा प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है।

**3)सही कथन पर (√) का चिन्ह तथा गलत कथन पर (x) का चिन्ह लगाइये -**

क)बरसीम की फसल में 120 किग्रा नाइट्रोजन प्रयोग की जाती है। (सही /गलत)

ख)बरसीम का बीज 10-20 किग्रा प्रति हेक्टेयर प्रयोग किया जाता है।(सही /गलत)

ग)कुफरी अलंकार आलू की किस्म है। (सही /गलत)

घ)जे. एच. वी. 146 बरसीम की उन्नत किस्म है। (सही /गलत)

4)गन्ने की अगेती उन्नतशील प्रजातियों के तीन नाम बताइये ।

5)सूरजमुखी  से कितनी उपज प्रति हेक्टेयर प्राप्त  होंती है ?

6)गन्ने की कितनी मात्रा एक हेक्टेयर बुवाई हेतु प्रयोग की जाती है ?

7)बरसीम की खेती हेतु एक हेक्टेयर में कितना बीज प्रयोग किया जाता है ?

8)बरसीम के बीज शोधन हेतु राइजोबियम कल्चर की मात्रा बताइये ?

9)फसल चक्र किसे कहते हैं ?

10)एक वर्षीय फसल चक्र का उदाहरण दीजिए ।

11) फसल चक्र का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त बताइये ।

12)बरसीम में सिंचाई के प्रबन्ध का वर्णन कीजिए ।

13)फसल चक्र सेहोने वाले लाभों का वर्णन करिए ।

14)   सूरजमुखी की फसल में कीट एवं रोग नियंत्रण के बारे में वर्णन करिए ।

15)   गन्ने की उन्नतशील प्रजातियों एवं बुवाई की विधि का वर्णन कीजिए ।

मिट्टी मिट्टि अ आ ट टा औ अं ओ टे टो क्  ट्रो टी ल्टी के अक्टूबर ओं किन्तु फूँ

back

# इकाई - 9फल परिक्षण

HXDSFH

- **जैम तथा जेली बनाना**
- **जेली बनाने में ध्यान देने योग्य बातें**
- **टमाटर की सॉस बनाना**

* **अचार बनाना**

- **तेल में आम का अचार बनाना**
- **नमक में आम का अचार बनाना**

सन्तुलित आहार में फल एवं सब्जियों का विशेष महत्व है।इन्हें रक्षात्मक आहार की संज्ञा दी जाती है। फल एवं सब्जियों में विटामिन, प्रोटीन एवं खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में होने के कारण मानव शरीर की रोगों से रक्षा करते हैं। अनुकूल मौसम में फल एवं सब्जियों की मात्रा अचानक बढ़ जाती है और उनकी कीमत कम हो जाती है। यदि फलों की कुछ मात्रा को संरक्षित कर लिया जाय तो उनकी गिरती हुई कीमत को नियन्त्रित किया जा सकता है। साथ ही फलों को संरक्षित करके उस समय प्रयोग में लाया जा सकता है। जब उनके प्राप्त होंने का मौसम नही होता है। संरक्षित किये हुए फल कम स्थान घेरते हैं। इस तरह वैज्ञानिक विधियों को अपनाकर फल एवं सब्जियों को बिना खराब हुए अधिक दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।फल एवं सब्जियों से जैम, जेली, मार्मलेड,शर्बत, सॉस, केचप इत्यादि उत्पाद प्रमुख रूप से बनाये जाते हैं।

**जैम बनाना**

जैम एक स्वादिष्ट व स्वास्थ्यप्रद पदार्थ है। फल के गूदे को शक्कर की पर्याप्त मात्रा के साथ एक निश्चित तापमान पर पकाने से जो उत्पाद तैयार होता है। उसे जैम कहते हैं जैम बनाने में गूदेदार फलों का उपयोग किया जाता है। जैसे- सेब,आम, पपीता, अनन्नास,नाशपाती आदि। जैम तैयार करने हेतु निम्नालिखत क्रियायें की जाती हैं।

1) फलों का चयन करना ।

2) गूदा तैयार करना ।

3) उबालना ।

4) पात्रों में भरना, ठण्डा करना और सील करना ।

1)**फलों का चयन करना** - जैम बनाने के लिए ताजे,अधपके एवं मध्यम आकार के स्वस्थ फलों का चयन करना चाहिए ।

2)**गूदा तैयार करना**-फलों का गूदा तैयार करने हेतु फलों को धोना,छीलना,काटना,गुठली निकालना,उबालना,छानना आदि क्रियाएं की जाती हैं। इस प्रकार तैयार किये फलों के गूदे को स्टेनलेस स्टील के बर्तन में पानी के साथ उबालकर मुलायम कर लेते हैं। उबालते समय फलों को दबाते व मिलाते रहना चाहिए ।

3)**उबालना या पकाना-** गूदे में उचित मात्रा में चीनी मिलाकर उबालते हैं। चीनी मीठे फलों की मात्रा का 3/4 भाग तथा खट्टे फलों की मात्रा के बराबर मिलाते हैं तथा 5 ग्राम एसीटिक अम्ल प्रति किग्रा फल के हिसाब से मिलाना चाहिए। तदुपरान्त गूदा,चीनी और अम्ल के मिश्रण को स्टेनलेस स्टील के बर्तन में उबालते हैं।उबालते समय मिश्रण को चलाते रहते हैं। जैम के तैयार होने से 2-3 मिनट पहले उसमें खाने का रंग मिला देते हैं। जब जैम में पानी की मात्रा समाप्त हो जाय तो जैम तैयार हो जाता है। जैम में कुल विलेय ठोस 68% (मिठास की मात्रा 68%)होनी चाहिए। जैम के पकने की अवस्था का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। जिसका परीक्षण निम्नालिखित विधियों से किया जाता है।

1) उबलते हए मिश्रण को लकड़ी के चम्मच में लेकर थोड़े समय के लिये हवा में ठण्डा कर गिराने से यदि जैम पककर तैयार हो गया है। तो वह चादर (शीट) की तरह गिरता है। अन्यथा बूँद -बूँद कर गिरता है।

2) उबलते हुए जैम की कुछ बूँद जल से भरी हुई प्लेट में रखें । जैम तैयार हो जाने पर वह तली में बैठ जायेगा । यदि सही तरह से नहीं पका है तो बर्तन की तली में फैल जायेगा ।

4)**पात्रों में भरना, ठण्डा करना और सील करना**- जैम को भरने के लिए विभिन्न प्रकार के काचँ के जारों का उपयोग किया जाता है। जैम भरने से पूर्व पात्र को कीटाणु रहित कर लेते हैं और उसमें तैयार जैम को रख देते हैं। जब ठण्डा हो जाय,तो उसकी ऊपरी सतहों पर मोम डाल देना चाहिए तथा सीलकर उसे सुरक्षित स्थान पर रख देते हैं । ऊपरी सतहों पर मोम की हल्की परत डालने से वायु का प्रवेश जैम में नहीं होता है और वह खराब नहीं होता है।

**सेब का जैम बनाने हेतु आवश्यक सामग्री**

सेब - 1 किग्रा

चीनी - 1 किग्रा

साइट्रिक अम्ल - 5 ग्राम

पानी - 1/2 लीटर

खाने वाला रंग -आवश्यकतानुसार

**जेली बनाना**

जेली बनाने के लिए पेक्टिन युक्त फलों जैसे- अमरूद, करौंदा, खट्टा सेब, कैथा, बेर, पपीता, नाशपाती, आदि फलों को उबालकर रस निकालते हैं। निकाले गये रस को शक्कर व अम्ल के साथ पकाने के पश्चात जमें हुए अर्ध ठोस पारदर्शक उत्पाद को जेली कहते हैं। एक अच्छी जेली में शक्कर, अम्ल एवं पेक्टिन एक निश्चित अनुपात में होना चाहिए।

**एक आदर्श जेली में निम्नालिखित गुण होने चाहिए ।**

1) देखने में पारदर्शक व चमकीली।

2) बोतल के उलटने पर जेली बहे नहीं।

3) स्पर्श करने पर चिपके नहीं ।

4) चम्मच से काटने पर सुगमता पूर्वक कट जाये। काटे गये किनारे वैसे हो बने रहें।

जेली का बनाना पेक्टिन, अम्ल तथा चीनी की मात्रा पर निर्भर है। यदि इनकी मात्रा सही अनुपात में नही होगी तो अच्छी जेली तैयार नही होगी क्योंकि-

* रस में पेक्टिन की मात्रा कम तथा अम्ल की मात्रा अपेक्षाकृत अनुपात में अधिक होगी तो बहती हुई जेली तैयार होगी ।

* रस में पेक्टिन की मात्रा अधिक और चीनी की मात्रा कम होगी तो जेली कड़ी तैयार होगी ।

* रस में पेक्टिन की मात्रा अधिक और अम्ल की मात्रा कम होगी तो जेली कमजोर तैयार होगी। जिसे कमजोर जेली कहते हैं।

* रस में यदि पेक्टिन की मात्रा से चीनी की मात्रा अनुपात में अधिक होगी तो जेली जमेगी नहीं ।

इस लिए रस के अन्दर उपर्युक्त पदार्थ का सही अनुपात में होना आवश्यक है।

**जेली तैयार करने की विधि**

**1)फलों का चयन करना** -पेक्टिन युक्त फल लेने चाहिए। फल सड़े-गले या कटे नहीं बल्कि ताजे और अधपके होने चाहिए।

**2)फलों को साफ करना**-फलों को साफ पानी से अच्छी तरह धो लेना चाहिए ।

**3)फलों को काटना**-फलों स्टेनलेस स्टील के चाकू से छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेना चाहिए ।

**4)फलों को गर्म करना**- काटे हुए फलों को स्टील के भगौने में रख कर इतना पानी डालें कि फल पूरी तरह डूब जायें फिर 30 मिनट तक उबालते हैं। उबालते समय प्रति किग्रा फल के हिसाब से 2 ग्राम साइट्रिक अम्ल मिलाते हैं जिससे फल से पेक्टिन शीघ्र निकल सके। उबले फल को छननी से छान लेते हैं। छानते समय ध्यान रखते हैं कि रस में छिलके या फल के टुकड़े न आने पायें। अब पेक्टिन युक्त रस में बराबर मात्रा में चीनी डालते हैं और मध्यम आँच पर उबालते हैं। खौलते समय जब बर्तन की पेंदी में बड़े-बड़े बुलबुले ऊपर उठने लगें तो समझना चाहिए कि जेली बनकर तैयार है। इसका परीक्षण करने के लिए एक चम्मच जेली एक गिलास पानी में डालते हैं। यदि यह जेली जम जाय तो समझते हैं कि जेली तैयार हो गई है और उसे आँच से उतार लेते हैं। अब तैयार जेली को गर्म अवस्था में हो जीवाणु रहित चौड़ी बोतल में भर देते हैं और 24 घण्टे बाद मोम को पिघलाकर जेली के ऊपर डाल देते हैं और ढक्कन बन्द करके सील कर सुरक्षित स्थान पर रख देते हैं। जेली में मिठास की मात्रा 65% होती है।

**5) आवश्यक सामग्री** -

फल - 1 किग्रा

चीनी - पेक्टिन के अनुसार 75 किग्रा

पानी - 1.5 लीटर

साइट्रिक अम्ल - 2 ग्राम

**जेली बनाने में ध्यान देने योग्य बातें**

जेली बनाते समय निम्नालिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए -

1) फलों के स्वच्छ रस से तैयार की गयी हो तथा जिस फल से तैयार की गयी हो उसकी सुगन्ध उसमें होनी चाहिए ।

2) कुल विलेय ठोस 65%होना चाहिए ।

3) जेली देखने में चमकदार, आकर्षक एवं अर्द्ध पारदर्शक होनी चाहिए ।

4) जेली में अम्लता 0.75 प्रतिशत होनी चाहिए ।

5) हाथ में लेने पर या चम्मच से उठाने पर चिपकनी नहीं चाहिए ।

6) जेली में फलों का गूदा नहीं आना चाहिए ।

7) जेली पेक्टिन युक्त फलों से हो बन सकती है।

**टमाटर की सॉस बनाना**

सॉस एक अर्ध ठोस तरल पदार्थ है। जो टमाटर के गूदों को मसाले,नमक,चीनी,सिरका,खाने वाला रंग एवं रासायनिक परिरक्षक मिलाकर एक निश्चित गाढ़ेपन तक पका कर बनाया जाता है। सॉस में कुल ठोस पदार्थ की मात्रा 16 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए। इस प्रकार तैयार किया गया पदार्थ सॉस कहलाता है।

टमाटर के सॉस तथा केचप में बहुत हो थोड़ा अन्तर होता है। दोनों के बनाने की विधि तथा सामग्री एक हो समान है। लेकिन अन्तर इतना होता है। कि केचप,सॉस की अपेक्षा थोड़ा गाढ़ा होता है। सॉस की ब्रिक्स प्रतिशत यानी मिठास 16-20 प्रतिशत तथा केचप की 28-30 प्रतिशत होती है।

**टमाटर सॉस तैयार करने की विधि**

**1) फलों का चयन करना** - भली-भाँति पके हुए गहरे लाल रंग के स्वस्थ टमाटर का चुनाव करना चाहिए ।

**2) फलों को साफ करना** -फलों के चयन के बाद स्वच्छ जल से धो कर साफ करना चाहिए ।

**3) फलों को काटना** - साफ फलों को स्टेनलेस स्टील के चाकू से काट लेना चाहिए ।

**4) फलों को पकाना** -फलों के टुकड़ों को थोड़े पानी के साथ 25-30 मिनट तक धीमी आँच पर पका लेते हैं।

**5) रस निकालना** - टमाटर के कटे टुकड़ों को पकाने के पश्चात स्टेनलेस स्टील की छननी से छान लेते हैं और रस इकट्ठा कर लेते हैं।

**6) रस पकाना तथा चीनी एवं मसाले मिलाना** - स्वच्छ स्टील के भगौने में टमाटर का रस,चीनी का 1/3 भाग तथा मसालों की पोटली डाल कर पकने हेतु रख देते हैं। जब रस कुछ गाढ़ा हो जाय तो चीनी का शेष 2/3 भाग व नमक उबलते हुए रस में मिला देते हैं। इसे बड़े चम्मच से बराबर चलाते रहना चाहिए। जब सॉस आधा रह जाय तो मसालों की पोटली रस में निचोड़ कर निकाल लेनी चाहिए ।थोड़ी देर बाद सॉस तैयार हो जाता है। सॉस तैयार हैं या नहीं इसके लिए एक परीक्षण करते हैं जिसे सॉस तैयार होने का परीक्षण कहते हैं ।

**7) सॉस का परीक्षण**- `रिफ्रैक्टोमीटर' नामक यन्त्र में सॉस भर कर परीक्षण करते हैं। यदि सॉस की ब्रिक्स 16-20%हो तो सॉस तैयार समझना चाहिए।

**8) परिरक्षण**- तैयारसॉस में एसिटिक एसिड और सोडियम बेन्जोएट को अपेक्षित मात्रा में डालकर सॉस को अच्छी तरह चलाया जाता है। इसमें आवश्यकतानुसार खाने वाला रंग भी मिला सकते हैं।

**9) बोतल भरना, बन्द करना एवं संग्रह करना-** जब सॉस कुछ ठण्डी हो जाय तो इसे क्राउन कार्क वाली बोतलों में भरना चाहिए। तत्पश्चात् क्राउन कार्क मशीन से सील कर देते हैं। यदि आवश्यक हो तो ढक्कन वाले भाग पर मोम पिघला कर उसमें डुबा लेते हैं। तैयार सॉस को शुष्क एवं ठण्डे स्थान पर भण्डरित किया जाता है।

**पाँच किग्रा टमाटर से सॉस तैयार करने हेतु आवश्यक सामग्री**

1.टमाटर के फल - 5 किग्रा

2.चीनी - 1.5किग्रा

3.नमक - 50 ग्राम

4.लाल मिर्च - 25 ग्राम

5.प्याज - 200 ग्राम

6.लहसुन - 50 ग्राम

7.अदरक - 100 ग्राम

8.गर्म मसाला - 25 ग्राम

9.एसिटिक एसिड - 2.5 ग्राम

10.रंग (खानेवाले ) - 1.2 ग्राम

11. सोडियम बेंजोऐट - 1.25 ग्राम ( 2 छोटी चम्मच )

**अचार बनाना**

अचार आंशिक रूप से किण्वित (लैक्टिक एसिड किण्वन) पदार्थ है। यह विभिन्न फलों और सब्जियों में नमक के माध्यम में तैयार किया जाता है। सरसों का तेल, सिरका, मसाले, एवं आवश्यकतानुसार चीनी मिलाकर तैयार किया जाता है। अचार पाचनशक्तिको बढ़ाताहै। अचार भोजन में स्वाद को बढ़ाता है। कुछ अचार विशेष रूप से रोगियों के लिए तैयार किये जाते हैं जैसे- अदरक,नींबू,प्याज,लहसुन तथाआँवला आदि से तैयार किये गये अचार।

**अचार बनाने की विधि** - अचार बनाने की अनेक विधियाँ है। जिसमें से प्रमुख विधियाँ निम्नालिखित हैं-

1.सरसों के तेल में तैयार करना ।

2.नीबू के रस में तैयार करना ।

3.सिरका में तैयार करना ।

**1.सरसों के तेल में अचार तैयार करना**- इसमें नमक और तेल की प्रधानता रहती है। जो कि परिरक्षण का कार्य करते हैं। तेल में बने अचार को अधिक लोग पसन्द करते हैं जैसे- आम,कटहल,गाजर,मूली,शलजम,आँवला के अचार सरसों के तेल में तैयार किये जाते हैं ।

**2.नींबू के रस में अचार तैयार करना** - नींबू,अदरक,मिर्च,प्याज आदि को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर,नमक एवं मसाले मिलाकर नीबू के रस में डालकर रख देते हैं। ये अचार 1-2 सप्ताह में प्रयोग कर लेने चाहिए ।

**3.सिरका में अचार तैयार करना**- प्याज,बन्दगोभी,खीरा इत्यादि के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर नमक मिला लिया जाता है। हल्की धूप में रख कर उसे सिरके में डाल देते हैं। इस प्रकार से बना अचार कई महीनों तक सुरक्षित रहता है। स्वाद के अनुसार अचार को निम्नालिखित दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

**क)मीठा अचार** - ऐसे अचार को चीनी की 66% (चीनी की चासनी में ) सुरक्षित कर लिया जाता है।

**ख)खट्टा अचार-** यह खट्टे फलों से बनाया जाता है। इसमें 10-15% नमक मिलाकर संरक्षित कर लिया जाता है। इसको 1-2 सप्ताह में प्रयोग कर लेना चाहिए ।

**नीबू का अचार बनाना**

नीबू के अचार बनाने हेतु पूर्ण विकसित, स्वस्थ फलों का चयन किया जाता है। इन फलों को चार समान टुकड़ों में काटकर छाया में सुखाते हैं। पानी सूख जाने पर इन टुकड़ों को

तैयार मसालों के साथ मिलाकर शीशे के जार में सूती कपड़े से ढककर धूप में रखा जाता है। आवश्यक नमक की एक चौथाई मात्रा मसाले मिलाते समय तथा शेष तीन चौथाई मात्रा एक सप्ताह बाद चम्मच की सहायता से नीबू के टुकड़ों में समान रूप से मिला देना चाहिए। जार को समय-समय पर अच्छी तरह से हिलाते रहना चाहिए। लगभग पन्द्रह दिन में जब नीबू के टुकड़ों का रंग गायब होने लगे तो अचार तैयार समझना चाहिए। अब ढक्कन को वायुरूद्ध तरीके से बन्द करके भण्डारित कर देते हैं।

**आवश्यक सामग्री**

1.नीबू के कटे टुकड़े - 1 किग्रा

2 नमक - 200 ग्राम

3. हल्दी (पिसी) - 50 ग्राम

4. धनिया पाउडर (पिसी) - 50 ग्राम

5.जीरा (पिसा) - 50 ग्राम

6. कलौजी (पिसी) - 25ग्राम

7. राई (खड़ी) - 25 ग्राम

8. लाल मिर्च (पिसी) - 25 ग्राम

(मसालों को भूनकर पीस लेना चाहिए।)

**तेल में आम का अचार बनाना**

सबसे पहले स्वस्थ और कच्चे आम लेते हैं। उन्हें साफ पानी से अच्छी तरह धो लेते हैं और उसे 4-6 भाग में काट कर गुठली,बीज निकाल लेते हैं और फिर तैयार मसाले को थोड़े तेल में मिलाकर आम के टुकड़ों में मिला लेते हैं। मसाले मिले आमों को धूप में रखने के बाद,

काचँ या प्लस्टिक के डिब्बों में,चीनी मिट्टी के बर्तन में भरकर ऊपर से तेल डाला जाता है औरफिर ढक्कन बन्द करके सुरक्षित स्थान पर रख देते है। कुछ दिनों बाद आम कुछ गल जाने पर उसका टेस्ट करते हैं। लगभग 25-30 दिनों बाद अचार तैयार हो जाता है।

अचार बनाने हेतु आवश्यक सामग्री

1)आम - 1 किलो

2)नमक - 50 ग्राम

3)हल्दी - 25 ग्राम

4)धनिया - 40 ग्राम

5)सौफ़ - 15 ग्राम

6)कलौंजी - 15 ग्राम

7)राई - 15 ग्राम

8)लाल मिर्चा- 20 ग्राम

**साफ मसालों को भूनने के बाद पीस कर प्रयोग करना चाहिए ।**

**नमक में आम का अचार बनाना**

आवश्यक सामग्री

आम के कच्चे फल- 2 किग्रा

नमक- 300 ग्राम

मेंथी दाना - 200 ग्राम

कलौंजी- 50 ग्राम

काली मिर्च - 25 ग्राम

हल्दी और लाल मिर्च-आवश्यकतानुसार

**विधि**- सर्वप्रथम आमों को धोकर चार-आठ फांको में काटकर उनकी गुठली (बीज) निकाल कर धूप में हल्का सुखा लेते हैं। तत्पश्चात् सभी साम्रज्ञी को आम के टुकड़ों को लपेट देते हैं और साफ ,सूखे चीनी मिट्टी या शीशे के जार में भरकर बन्द करके रख देते हैं। इससे अचार खराब नहीं होता है।

**विशेष-**

**1.एगमार्क**- यह खाद्य पदार्थ पर दिया जाने वाला शुद्धता का मानक प्रमाण पत्र है। इसका मुख्यालय कानपुर में स्थित है।

**2.ISI** - इसका कार्य खाद्य पदार्थ के अलावा अन्य उत्पादों पर गुणवत्ता प्रदान करने के लिए मानक चिन्ह प्रदान करना है। यह 159 उत्पादों पर प्रदान किया गया है। जैसे- स्टोव,मोटर पार्टस, स्विच, बल्ब, कुकर, लौह उत्पाद आदि पर। इसका मुख्यालय दिल्ली में स्थित है।

**3.WTO (World Trade Organization)** - यह विश्व व्यापार संगठन है। इसकी स्थापना 9 जनवरी 1995 को हुई। इसका मुख्यालय जेनेवा में स्थित है।

**4.BIS (Bureau of Indian Standard)** भारतीय मानक ब्यूरो- यह भारत सरकार का राष्ट्रीय निकाय है। इसका कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है। तथा इसके पांच अन्य क्षेत्रीय कार्यालय कलकत्ता,चण्डीगढ़,मुम्बई,दिल्ली तथा चेन्नई में कार्यरत हैं इसका कार्य उत्पाद मानकीकरण,चिन्ह योजना से उपभोक्ताओं को राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप गुणवत्ता का आश्वासन प्रदान करना है।

**5.FCI (Food Corporation of India)**भारतीय खाद्य निगम- इसकी स्थापना 1965 में हुई। इसका उद्देश्य देश में खाद्यानों का न्यायपूर्ण वितरण एवं उनके मूल्यों में स्थिरता लाना है।यह भारतीय खाद्य एवं रसद मंत्रालय के द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

**6.UNESCO (United Nations Educational Social and Cultural Organization)** संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक,सामाजिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन - इसकी स्थापना 4 नवम्बर 1946 को हुई तथा 14 दिसम्बर 1946 के दिन यह UNO का विशिष्ट आभिकरण बना। इसका मुख्यालय पेरिस में है तथा इसका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सांस्कृतिक गतिविधियों का संचालन करना है।

**7.WHO (World Health Organization)विश्व स्वास्थ्य संगठन** - इसका उद्देश्य विश्व की जनता को स्वास्थ्य की उच्चतम संभव दशा प्राप्त कराना है तथा सभी लोगों के जीवन स्तर को अधिक से अधिक ऊँचा बनाना है। इसका मुख्यालय (जेनेवा)स्विटजरलैण्ड में है।

**8)CAT (Centre for Advanced Technology)**- इसकी स्थापना 1984 में इन्दौर (M.P.)में की गई थी। लेसर एक्सीलरेटर्स तथा इनसे सम्बन्धित उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्रों जैसे- क्रायोजेनिक्स, आतिचालक,अल्ट्राहाई वैक्यूम इत्यादि में अनुसंधान कार्यक्रम चलाता है।

**9)LIC(Life Insurance Corporation of India)** भारतीय जीवन बीमा निगम- इसकी स्थापना 1956 में हुई । इसका मुख्यालय मुम्बई में है। यह अपना कार्य क्षेत्रीय कार्यालयों तथा शहरों में मण्डल कार्यालयों तथा शाखा कार्यालयों के माध्यम से करता है। इसका उद्देश्य जीवन बीमा का सन्देश फैलाना तथा जनता की बचत को राष्ट्र निर्माण के कार्यो के लिए जुटाना है।

**10)UTI (Unit Trust of India)** - भारतीय इकाई न्यास - इसकी स्थापना 1964 में की गई। यह छोटी - छोटी बचतों को जनता से एकत्र करके इसका निवेश औद्योगिक विकास में करता है।

अभ्यास के प्रश्न

1)सही विकल्प के सामने(√) का चिन्ह लगाइये -

**i) जैम तैयार किया जाता है।**

क) केला ख) सेब से

ग) नींबू से घ) अंगूर से

**ii) जेली बनायी जाती है।**

क) अमरूद ख) केला

ग) पपीता घ) गाजर

**iii) सॉस तैयार किया जाता है।**

क) नींबू ख) आम

ग) सेब घ) टमाटर

**iv) अचार तैयार किया जाता है।**

क) तेल में ख) पानी में

ग) नींबू के शर्बत में घ) इनमें से कोई नहीं ।

**2)नीचे लिखे कथन में सही के सामने(√) तथा गलत के सामने (x) का निशान लगाइये -**

i) जैम कच्चे फलों से बनाया जाता है।

ii) जैम पके फलों से बनाया जाता है।

iii) जैम अधपके फलों से बनाया जाता है।

iv) जैम सूखे फलों से बनाया जाता है।

v) जेली बनाते समय उसमें चीनी की मात्रा रस का मात्रा की 3/4होनी चाहिए।

vi) टमाटर से सॉस बनाते समय फल समूचे रूप में डालना चाहिए।

vii) जेली को बोतल में गर्म अवस्था में भरना चाहिए।

viii) जेली पारदर्शी होनी चाहिए।

ix) सॉस में चीनी की मात्रा 25%होती है।

x) सॉस टमाटर की अपेक्षा सेब से अच्छी किस्म का बनता है।

xi) सबसे अच्छा जैम नींबू से बनाया जाता है।

xii) जेली फलों के गूदे से बनायी जाती है।

xv)सॉस और केचप की मिठास बराबर होती है।

xvi) जैम पारदर्शी होती है।

3) स्तम्भ `क' को स्तम्भ `ख' से सुमेल कीजिए-

| **स्तम्भ `क'** | **स्तम्भ `ख'** |
|---|---|
| 1.जेली | सेब |
| 2.जैम तैयार<br>किया जाता है। | जेली |
| 3.पेक्टिन युक्त फल | पारदर्शक होती है। |

लेना चाहिए बनाने के लिए

4)जेली बनाने की विधि संक्षेप में लिखिए ।

5)आम का अचार नमक के साथ  कैसे बनाया जाता है ? वर्णन कीजिए ।

6)जैम और जेली में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

7)अमरूद की जेली आप कैसे तैयार करेंगे ?

8)जैम किन-किन फलों से बनाया जाता है।? सेब से जैम आप कैसे तैयार करेंगे ?

9)टमाटर की सॉस तैयार करने के लिए उपयुक्त आवश्यक सामग्री के बारे में सारणी सहित वर्णन कीजिए ?

10) आम का अचार कैसे बनाया जाता है ?

11)नींबू का अचार कैसे बनाया जाता है तथा क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए ?

back